ज्ञानसत्र प्रकाशन न्यास का प्रथम दीप

श्रीनर्मदा कल्पवल्ली

परिशोधित उन्नीसवां संस्करण दश हजार
अन्नत चर्तुदशी वि. संवत् २०६७ सन् २०१०
मूल्य - १५/- ~~१५.००~~

प्रकाशक

ज्ञानसत्र प्रकाशन न्यास (पञ्जीकृत)
नर्मदा सत्संग भवन–ज्ञानसत्रायन
नर्मदापुर, होशंगाबाद (म०प्र०) ४६१००१

तपोमूर्ति स्वामी ओङ्कारानन्द गिरि द्वारा सम्पादित

निवेदन

अत्यन्त **लोकप्रिय** होने से पिछला संस्करण पाठकों ने दो वर्ष में ही ग्रहण कर लिया। अब यह पुन : परिशोधित नया संस्करण आपके हाथ में है आशा है इसे भी शीघ्र अपना कर नर्मदा जी की प्रसन्नता प्राप्त करेंगे।

ध्यान रहे-ज्ञानसत्र प्रकाशन न्यास की मुद्रा अंकित हुई देखकर ही पाठक समस्त नर्मदाजी का पवित्र साहित्य ग्रहण किया करें।

-सम्पादक

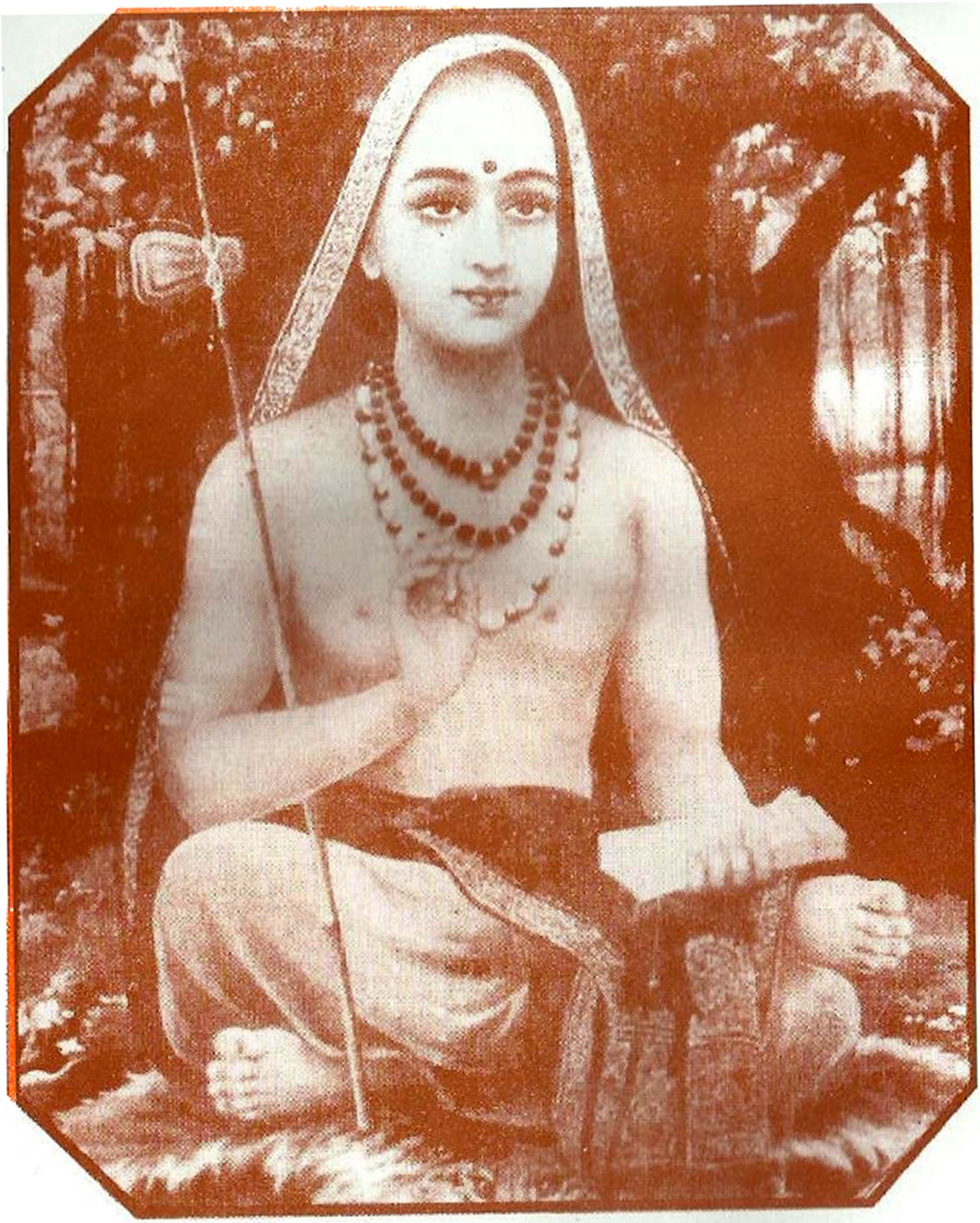
श्री नर्मदा देवी

उभयतटपुण्यतीर्था प्रक्षालित सकललोकदुरित्तौघा ।
देव-मुनि-मनुजवन्द्या हरतु सदा नर्मदा दुरितम् ।।



यन्मूलेऽस्त्यमरेश्वरो विजयते श्रीसिद्धनाथस्तथा
कावेरी परिवेष्टितो गतिदओंङ्कारोऽपरेचामिता: ।
मध्येऽन्येऽपि च शूलपाणिसहिता पाश्चात्यभागे स्थिता:
सर्वे ते भजतामभीष्ट-फलदा: पर्वति सा नर्मदा ।।

श्री भगवत्पाद शंकराचार्यस्वामी



वेदान्तार्थं–तदाभास–क्षीरनीर–विवेकिनम् ।
नमामि भगवत्पादं परहंस–धुरन्धरम् ।।

नर्मदा कल्पवल्ली

हर नर्मदे हर नर्मदे हैं वन्दना के बोल ये।
हर नर्मदे हर नर्मदे भुवि रत्न हैं अनमोल ये॥
हर नर्मदे हर नर्मदे भासे अनेकाकार हो।
नित निराकार स्वरूप शिव साकार नीराकर हो॥१॥

सर्वार्तिहरकी चेतना हो दया पारावार-सी।
सोमोद्भवा रेवा अहो प्रगटी सुधाकी धार-सी॥
प्रत्यक्ष कलिमें कल्पवल्ली शिवमयी शिवधामदा।
सुखदा विभवदा सिद्धिदा श्रीनर्मदा वरदा शुभा॥२॥

यह शाङ्करी गङ्गा प्रथम आई धरापर तारिणी।
मनुसे कहा तव प्रान्तमें भागीरथी भयहारिणी॥
वह आयगी कुछ कालमें, संवाद रेवाका यहीं।
वर्णित, अतः प्रख्यात हुइ यह दक्षिणी गङ्गा कहीं॥३॥

सबके मनोरथ पूर्ण करने आइ अमृता नर्मदा।
फिर क्यों न इसकी जय करें प्रमुदित हुए हम सर्वदा॥
वैराग्य और विवेककी देनी त्रिवेणी ज्ञानकी।
है चिन्मयी करुणामयी हरणी दुरित अज्ञान की॥४॥

अध्यात्मकी चिच्छक्ति जो सर्वात्ममय शैवी छटा।
अधिदेवमय कल्पान्तमें मुनिने लखी दैवी घटा॥
अधिभूतमें अद्भुत वही श्रीनर्मदा भूपर बही।
है तीर्थजननी आज भी त्रैविध्य दर्शन दे रही॥५॥

नर्मदा विजयतेतराम्

सोमोद्भवा सुधा वसुधा पर आई बन कर पानी।
सप्त कल्प-पर्यन्त अमर लख ऋषि ने कही कहानी॥
दिव्य छटाएँ नई घटाएँ देख प्रकृति अकुलानी।
देवी प्रजा प्रगति सुस्थिर कर शिवगङ्गा हर्षानी॥१॥

नाम नर्मदा धर्म कर्मदा कहें जगत् के प्राणी।
विन्ध्यपुत्र को मिला श्रेय पर शिरोधार्य जो मानी॥
करुणामयी हृदय में शिव के अभ्यन्तर लहरानी।
आविर्भूत हुई भूतल पर तब सुरसरि पहचानी॥२॥

रेवा रूप अनूप दिखाया दिव्यधार परिधानी।
क्षण-क्षण में जिसकी आभा हो नित नूतन फहरानी॥
मानी कविने हार हो गई अथवा दृष्टि पुरानी।
चक्रावर्त चमत्कृत चहुँ दिशि लख मति भई अजानी॥३॥

मेकल शिखर श्रेणियाँ सन्तत ले उपहार खड़ी हैं।
हीरक भरीं हरी-सीं जँह तँह ओढ़नि ओढ़ अड़ी हैं॥
रेवाकी सेवा में जिनका तन-मन सभी अचल है।
कलरव सुन कोकिलका माई स्वयं करे कल-कल है॥४॥

मन हर रही मनुज का क्या बलिहारी सचराचर है।
दर्शन मज्जन पान किए जीवन हो जाय अमर है॥
लगे निरन्तर लोग अतः इसकी प्रदक्षिणा करने।
मान मनौती क्या कोई तो लगे सिन्धु भव तरने॥५॥

योगी यती सती पतिभक्ता आश करें सब जिसकी।
मुदित हुए आरती उतारें नर नारी हैं इसकी॥
हर-हर करती हर-हर धरती निजधरती में रेवा।
हर-हर पाप ताप जन-जन का स्वयं कर रही सेवा॥६॥

घाट-घाट मन्दिर अगणित क्या मनमन्दिर है रचती ।
घट-घट में जो बसे निरन्तर सोऽहं-सोऽहं रटती ॥
वैभव दिव्य सभी है माता ! भाता जन को तेरा ।
पदपंकज में सतत नर्मदे नमस्कार हो मेरा ॥७॥

अर्चा की चर्चा क्या होगी खर्चा मिला न राखा ।
मनमें जो आया हे रेवे यश बस तेरा भाखा ॥
पाप-ताप सब हर माँ मेरे सब दिन करूँ बड़ाई ।
विजयी रहे सदा गङ्गाजल तेरा रेवा माई ॥८॥

एकबार क्या एक दिवस माँ महिमा तेरी गाए ।
प्रातः सायं 'प्रणव' मध्यदिन अथवा शीश नवाए ॥
जनगण सब गाएँगे तेरी युग-युग संस्तुति होगी ।
रही धरापर यति की वाणी सदा विजयिनी होगी ॥९॥

रेवा माँ

लहर-लहर में रेवा माई सेवा तेरी पाई ।
कर अभिषेक अखण्डित शिव का महिमा दश दिशिछाई ॥
कण-कण में भर रही मधुरिमा पय पायस हो जाए ।
पा प्रसाद प्रमुदित नर नारी हर्ष हृदय भर लाए ॥१॥

नाम नर्मदा क्यों न होय फिर जन-जनको सुखदाई ।
अमित प्रभाव तपस्वी गणसे वर्णित तेरा माई ॥
दिव्य धाम प्यारा है सारा देव दनुज हितकारी ।
मनुज आज भी हैं कृतार्थ पा तुझे होंय बलिहारी ॥२॥

नर्मदा मञ्जरी

शोभती थी लता कल्पवल्ली बड़ी
स्वर्ग में देवता साधते स्वार्थ थे ।
मानवों ने विचारा सभी लाभ लें
दिव्य भू क्या न होगी हमारी मही ? ॥ १ ॥

की तभी शम्भुकी शुद्ध आराधना
तो लता क्या सुधा धाम भी सोमका।
हो द्रवीभूत सारा धरा पै बहा
नाम रेवा उसीका हुआ नर्मदा ॥ २ ॥

कामना पूर्ण हो कल्प की छाँह में
जो सुना था उसे आज देखें सभी।
घाटमें बाटमें ग्राममें धाममें
नर्मदाकी तरंगें उमंगें भरें ॥ ३ ॥

जीवको जो हुईं कल्पनाएँ यहाँ
वे फलीं फूलतीं भासतीं मंजुला।
कीर्ति फैली भली लेखिनी भी चली
लोक में लोकते नर्मदामञ्जरी ॥ ४ ॥

गारहे गीत ग्रामीण बन्धू हि क्यों
ये कवी क्रान्तदर्शी सुधी भी सभी।
गारहे भाव भीने स्वरोमें सही
नर्मदामञ्जरी नर्मदामञ्जरी ॥ ५ ॥

मञ्जरी मञ्जुरी तूं हिए में बसी
मोहती आ रही शुभ्र आलोक में।
है भली सर्वदा-सर्वदा जीवको
दे रही भव्यता माँ निजी धाम की ॥ ६ ॥

भगवती भागीरथी गंगाकी भाँति जटाशंकरी श्रीनर्मदाके महत्त्वको कौन आस्तिक जन नहीं जानता ? जिसका मंगलमय गुणगान वैदिक संहिताओं से आरम्भ होकर महर्षिप्रणीत-पुराणेतिहास आगमादि पवित्र ग्रन्थराशियोंमें भलीभाँति वृद्धिको प्राप्त हुआ। और आज भी अगणित सुधीजन इसकी महनीय कीर्तिका वर्णन करते हुए कृतकृत्य हो रहे हैं। देव-दानव-मानव-पशु-कीट-पतंगादियोंके शोक सन्तापका हरण करनेवाली एवं शुभगति प्रदान करनेवाली रेवा केवल प्राणियोंके

श्रवणपथका ही विषय नहीं, अपितु पुण्यकाय पवित्र पयोराशिमय सुरसरित् आज भी इस कराल कलिकालके कुटिल जीवोंके आन्तरिक और बाह्यमलोंका प्रक्षालन करती हुई इस धराधाम पर विद्यमान है।

प्रलयकालमें भी विलय न होनेवाली दिव्य विग्रहमयी नर्मदाका दर्शन अवगाहन आदि जिन्होंने किया वे धन्य हैं। दिव्यमूर्तियों के दिव्य विग्रहका रहस्य सर्वसाधारणकी बुद्धिका विषय नहीं होता। किन्तु तपःपूत देवानुग्रह सम्पन्न किसी निर्मल मतिमें ही उसका समुचित विकास होता है। अलौकिक देवताओंके चरित्र लोकके आलोकमें नहीं आते। दिव्यदृष्टि-हीन आलोचकोंके लोचन क्या समालोचन भी अलोचन सिद्ध हो जाते हैं। चर्मचक्षुओंसे प्रत्येक प्राणी पाञ्चभौतिक प्रपञ्चका ही निरीक्षण करते हैं, आध्यात्मिक आधिदैविक गति उनके लिये सर्वदा अगोचर ही बनी रहती है। अस्तु।

श्री नर्मदाका विशेष महत्त्व हमें स्कन्द और पद्मपुराणके रेवाखण्डोंमें जो सैकड़ों अध्यायोंमें निबद्ध हैं उनसे भलीभाँति अवगत होता है। वैसे तो वायुपुराण, शिवपुराण, महाभारत, वाशिष्ठसंहिता, ब्राह्मीसंहिता आदि अनेक आकर ग्रन्थोंमें भी इनकी महिमा कम नहीं, तथापि रेवातट वासियों के लिए 'रेवापुराण' (खण्ड) तो आज भी श्रीमद्भागवतकी भाँति श्रवणानुष्ठानका विषय बना हुआ है। इन सभी ग्रन्थोंमें नर्मदाके इस धराधामपर प्रगट होनेकी कथाएँ कल्पभेदसे विलक्षण ढंगसे वर्णनकी गई हैं।

पुराणोंमें श्रीनर्मदाकी उत्पत्ति कथा

महर्षि वशिष्ठने भगवती श्री नर्मदाकी उत्पत्तिका प्रसंग अति सरल शैलीसे वर्णन किया है। संक्षेपसे कथा यह है कि—जिस समय भगवान् शंकर अन्धकासुर मूर्तिमान्-अज्ञानान्धकार का वध करके प्रसन्न शान्त मुद्रामें समासीन थे उस समय भगवान् विष्णुने शिवकी बड़ी स्तुति की। बड़ी देवताओंने विष्णुसे कहा—हम सब ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, धर्मविरुद्ध अनुचित

कामोपभोगसे आतुर हुए पाप कर्ममें प्रवृत्त हुए हैं और स्वयं आप भी अनेक दानवोंके बध करने से हिंसाजन्य दोषसे युक्त हुए हैं।

एवं स्वीयेन पापेन सर्वे दूष्यत्वमागताः।
पापप्रक्षालनार्थाय किं कर्तव्यं पृथक् पृथक् ॥१॥
देवानां प्रार्थनां श्रुत्वा भगवान् कमलापति.।
शिवं संप्रष्टुमारेभे आसीनं मेकले गिरौ ॥२॥

इसप्रकार जब हम सब अपने पापसे अनेक दोषोंको प्राप्त हो गये तब इसकी निवृत्तिके लिए हमें क्या करना चाहिए ? लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु देवताओंकी प्रार्थना सुनकर मेकल (अमरकण्टक) पर्वत पर विराजमान् भगवान् शिवसे विनयपूर्वक पूछने लगे। प्रसन्न हुए भगवान् भवानीपति शिव करुणासे द्रवीभूत हो गये। तत्क्षण मस्तक पर सुशोभित सोमकलासे एक विन्दु पृथ्वी पर पड़ा। देवताओंके देखते-देखते उसी समय एक अद्भुत घटना हुई। उस अमृत विन्दुका पृथ्वीपर स्पर्श होते ही एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या प्रकट हो गई।

नीलोत्पलदलश्यामा सर्वावयवसुन्दरी।
सुद्विजा सुमुखी बाला सर्वाभरणभूषिता ॥३॥

वह नील कमल दलके समान श्यामवर्ण, सम्पूर्ण अवयवोंसे अति सुन्दर शोभा बढ़ानेवाली, मनोहर दन्त पंक्तिसे युक्त सुन्दर मुखवाली बालिका समस्त अलंकारोंसे युक्त थी। उसकी प्रभापुञ्जसे देवताओंका तेज मन्द पड़ गया। वे सब उसकी स्तुति करने लगे।

नमः प्रणतपालिन्यै प्रणतार्तिविनाशिनी।
पाहि नो देवि दुष्प्रेक्षे शरणागतवत्सले ॥४॥
यतो ददासि नो नर्म चक्षुषां त्वं विपश्यताम्।
ततो भविष्यसे देवि विख्याता भुवि नर्मदा ॥५॥

हे देवि ! दर्शन करनेवाले हम सबोंको तुम कल्याणकारी सुख दे रही हो, अतएव भूतल पर 'नर्मदा' नामसे प्रसिद्ध होओगी। तदनन्तर कन्या भगवान् शङ्करकी नम्रता पूर्वक स्तुति करती हुई बोली—

पितासि त्वं मे जगतामधीशो, दुरत्ययः काल उपात्तशक्तिः ।
आज्ञप्तुमामर्हसि देवदेव ! किमस्ति कार्यं करणीयमाशु ।।६।।

हे देव ! आप मेरे पिता हैं, सम्पूर्ण चराचर के स्वामी हैं, दुरन्तकाल भी आप से ही सामर्थ्य ग्रहण करता है । प्रभो ! इस सयम मुझे क्या करना उचित है ? शीघ्र आज्ञा प्रदान करें । शिवजी ने कहा तुम शीघ्र ही जलरूप धारण करके जगत् में प्रकट हो जाओ । संसार के पाप ताप हरण करने वाली तुझ में जो स्नान आदि करेंगे वे तीनों लोकों में धन्य होंगे । सत्वरं जलरूपं त्वं धारयित्वा शुभानने····

तव वारिगतं चास्थि शिलारूपं भविष्यति ।
तस्याप्यर्चनमात्रेण नरः कामानवाप्नुयात् ।।७।।

हे नर्मदे ! तुम्हारे जल में अस्थियाँ पाषण हो जाँयगी और जो मनुष्य उनका पूजन करेंगे उनके सभी मनोरथ पूर्ण होंगे । तदनन्तर पुनः शिवजी ने कहा, हे भद्रे ! भगवान् विष्णु को नमस्कार करके पृथ्वी पर जाओ । उनके अनुग्रह से तुम गंगा के ही समान प्रसिद्ध होओगी । नर्मदा ने प्रणाम किया । विष्णु ने भी तब उन्हें वरदान दिया—

नर्मदे त्वं महाभागा सर्वपापहरी भव ।
त्वदप्सु याः शिलाः सर्वाः शिवकल्पा भवन्तु ताः ।।८।।

हे नर्मदे ! तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो । तुम संसार के समस्त पापों को हरण करनेवाली होवोगी । तुम्हारे जल में स्थित सब पाषाण शिवतुल्य होंगे अर्थात् शिव मानकर पूजे जायेंगे ।

माघे च सितसप्तम्यां दास्त्रभे च रवेर्दिने ।
मध्याह्नसमये राम भास्करेण क्रमागते ।।९।।

वशिष्ठजीने कहा हे राम ! माघ शुक्ल सप्तमी, अश्विनी नक्षत्र, रविवार मकरराशि गत सूर्यके रहते हुए मध्यान्ह कालमें श्रीनर्मदा पृथ्वीपर प्रगट हुई ।

स्कंदपुराणान्तर्गत दोनों रेवाखण्डोंमें नर्मदाजीके प्रगट होनेकी अनेक कथाएँ बड़े विस्तार से वर्णन की हैं। उनका भी तात्पर्य यही है कि देवताओं ने भगवान् शङ्करसे प्रार्थना की।

आस्ते नदी महाभागा नर्मदा नाम विश्रुता।
अवतारय तां शम्भो कुमारीं दिव्यरूपिणीम् ॥१०॥

हे भक्त सुखदाता प्रभो! अति पवित्र दिव्य विग्रहवती कुमारी प्रसिद्ध देवनदी नर्मदाको लोककल्याणार्थ भूतलपर अवतरित करें।

किसी समय नर्मदाने भगवान् शिवसे वरदान माँगा था—

स्वर्गादागम्य गङ्गेति यथा ख्याता क्षितौ विभो।
तथा दक्षिणगङ्गेति भवेयं त्रिदशेश्वर ॥११॥

हे महादेव! पृथ्वीमें जिसप्रकार गंगा स्वर्गसे आकर प्रसिद्ध हुई उसी प्रकार मेरी दक्षिणगंगा नामसे प्रसिद्धि हो। तब भगवान् शिवने भी इन्हें अनेक वर दिये। कल्पभेद से गंगा और नर्मदा आगे पीछे धरा पर प्रगटीं। और विवाह की भी कहीं चर्चा है।

सारांश यह लोकानुग्रहके लिये भगवान् शिवके विग्रहसे ही नर्मदाका प्रगट होना सिद्ध है। जटाओं में वास होनेसे जटाशंकरी, अति चञ्चल वेगवती गति होनेसे 'रेवा', मार्कण्डेय मुनिने अनेक प्रलयोंमें भी इनका अभाव नहीं देखा, अतः न भरनेवाली होनेसे 'नर्मदा' नाम पड़ा। अमरताका भी वरदान इन्हें मिला। शिव की सोमकलासे प्रगट होने से 'सोमोद्भवा' और मेकल पर्वतने इनके वेगको धारण किया, इससे 'मेकल कन्या' आदि नाम भी प्रसिद्ध हुए

नर्मदाके तीर्थ और प्रभाव

पुराणों में वर्णित रेवातटवर्ती अनेक तीर्थ ज्योतिर्लिङ्ग-उपलिङ्ग ओङ्कारेश्वर-ममलेश्वर शूलपाणीश्वर-गरुड़ेश्वर हंसेश्वर-विमलेश्वर महेश्वर-मण्डलेश्वर-सिद्धनाथ-रिद्धनाथ-बद्रिकाश्रम-व्यास-अनसूया भृगु-क्षेत्र आदि आज भी प्रसिद्ध हैं। 'नर्मदाके कंकर सब शिवशंकर' यह प्रामा-

णिक लोकोक्ति तो निसंदेह नर्मदाको सर्वत्र शिवमयी होना सिद्ध कर रही है। भारतके प्रायः सभी शिवपीठोंमें इनके वाणलिङ्गोंका प्रतिष्ठित किया जाना प्रत्यक्ष प्रमाण है। अमरकण्टकसे रेवा सागर संगम तक असंख्य तीर्थोंका उल्लेख पुराणोंमें है।

विधि-हरि-हर-सुर- सूर्य- चन्द्र-इन्द्र-वरुण-कुबेर-स्कन्द-सनत्कुमार-नारद-नाचिकेत-वशिष्ठ- व्यास- कश्यप-गौतम-भारद्वाज- भृगु-याज्ञवाल्क्य- मार्कण्डेय, पुरूरवा-हिरण्यरेला आदि अगणित देवर्षि महर्षि और राजर्षि वृन्द ने रेवाका सेवन किया और दीर्घकाल तक तपश्चर्या करते हुए उन्होंने यह अनुभव किया कि—'रेवातीरे तपः कुर्यान्मरणं जाह्नवीतटे' अतः कहनेकी आवश्यकता नहीं कि तपसे होनेवाली सभी सिद्धियाँ यहाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। नर्मदाके सिद्ध तो प्रसिद्ध ही हैं। इसी सिद्धि-दायिनी माँ रेवाकी पवित्र भूमिमें आद्य आचार्यप्रवर भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यजीने सद्गुरु श्रीगोविन्दपादाचार्यकी प्राप्ति की। मण्डनमिश्र और सरस्वतीके साथ आचार्यश्रीके प्रसिद्ध शास्त्रार्थकी पावन भूमि माहिष्मती नगरी भी इसी रेवातटपर विराजमान है। जिसे महेश्वर और कोई मण्डला कहते हैं।

पर्यटनशील और विरागवान् जनोंके भी चित्तको सहज आकृष्ट करनेवाला नर्मदाका नैसर्गिक सौन्दर्य भी बड़े महत्त्वकी वस्तु है। कपिलधारा-धुआँधार (भेड़ाघाट) धारातीर्थ (धावड़ीकुण्ड) आदि जलप्रपातोंकी झाँकी झाँकनेके लिए अगणित यात्रीगण बड़ी उत्कण्ठा से भ्रमण करते हैं। और वे अपने चर्मचक्षुओंको सफल करते हुए अमित पुण्यका भी सञ्चय करते हैं। सुरम्य शैल अमरकण्टककी शोभन वनस्थली जो कि नर्मदाजीके उद्गम होनेका पावनतम प्रदेश है, सर्वाधिक तीर्थोंका जहाँ वर्णन ही नहीं दृष्टि-गोचर भी है उसे देखकर किसे दिव्यानन्दकी प्राप्ति न होगी? कविकुल-कमल-दिवाकर कालिदास की यही जन्मभूमि है। मेघदूतमें उन्होंने इसे आम्रकूट नामसे वर्णन किया है। सोनभद्रका उद्गम भी यहींसे हुआ। प्राचीन मठ मन्दिर आज भी यहाँ विद्यमान हैं। इसकी ऊँचाई ३५०० फीट मानी जाती है।

नर्मदाकी विशेष महत्ता

यों तो सभी तीर्थोंका माहात्म्य पुराणोंमें प्रचुर मात्रामें मिलता है, तथापि नर्मदाकी असाधारण विशेषताएँ इनकी उपासना करनेवाले ही भलीभाँति अनुभव करते हैं। अठारहसौ मीलकी दीर्घकालीन परिक्रमा-पद्धति उन विशेषताओंमें एक सबसे बड़ी विशेषता है। इस प्रदक्षिणामें प्रतिवर्ष सहस्रोंकी संख्यामें अब भी प्रायः रेवाभक्त अनेक कष्टोंको झेलते हुए सानन्द उपासनारत देखे जाते हैं। यह प्रदक्षिणा महीनोंमें समाप्त न होकर वर्षोंमें पूर्ण की जाती है। अधिक समय प्रदक्षिणा में व्यतीत करना अधिक महत्त्वशाली माना जाता है। त्याग और तपस्याकी पुष्टि भी इस प्ररिक्रमामें भलीभाँति होती रहती है।

इस पावन नदीके तटपर बड़े-बड़े नगरोंका प्रायः कोई सम्पर्क न होनेसे इसकी पवित्रतामें अभी तक कोई बाधा नहीं आयी। जैसे अन्य देव-नदियों में कलिके कुचाली मानवोंने गन्दे नालों आदिसे उन्हें दूषित करनेमें कोई कसर नहीं रखी। पर यहाँ तो सर्वतो भावेन विकास परियोजना सफल होने जा रही है।

इसके तटपर निवास करनेवाले भाग्यवान् जन रेवा माँ पर पूर्ण आस्था रखते हुए सब प्रकारके आनन्दका अनुभव करते हैं और कहने लगते हैं —
नर्मदा निरञ्जनी। सर्वदुःखभञ्जिनी ॥

सन्तोंकी मनोरम भूमि

नर्मदाके तट पर प्रायः सदैव सन्तोंका निवास रहा और है। सकाम भावसे यों तो इसके प्रदक्षिणा पथमें प्रतिवर्ष सहस्रों मानव सफल होते देखे जाते हैं। तथापि विवेक वैराग्यशील त्यागी तपस्वियोंकी विशेष आनन्ददायिनी यह दिव्य नदी अवश्य सेवन करने योग्य है। दो-दो चार मील पर यहाँ भी गंगा तटके समान संतोंकी कुटियाँ प्रायः मिलती हैं। भजन साधनादिके लिए निर्जन कानन इसके बड़े ही मनोरम और आवश्यक सामग्रियोंसे प्रायः पूर्ण हुआ करते हैं। वट और शाल वृक्षोंकी

सघन छाया से सदैव सुसज्जित रहनेवाला अमरकण्टक अतीव मनोहर है। भीलोंसे भरपूर शूलपाणिकी झाड़ी, ओंकारकी झाड़ी, मुण्डामहारण्य यहाँकी दुर्गम वनभूमि प्रसिद्ध है। इतना ही कथन पर्याप्त है कि रेवाका अनुपम माहात्म्य श्रवणकर जिन्होंने दर्शनावगाहनसे इसका अनुग्रह प्राप्त किया, वे सदाके लिए इसकी महिमाके गुणगायक हो गये।

नर्मदा की प्रभाती

जय जय जगदम्ब मातु नर्मदा भवानी ॥ जय० ॥ निकसी जलधार जोर, पर्वत पहाड़ फोड़, दुष्टनके गर्व मोड़ प्रगटी महारानी ॥ जय० ॥ घाट-घाट छवि अनन्त, सेवत सिध साधु सन्त, भक्तन आनन्द देत देवराजधानी ॥जय०॥ भूषण अम्बर विशाल, केशरकी खौर भाल, मानो रवि उदयकाल शोभा सुखदानी ॥जय०॥ अमरकण्ट प्रगट भई, सागर सों मिलन गई, मध्यकोटि तीर्थ रचे मुक्तिकी निशानी ॥जय०॥ ओंकार महिमा अपार, शूलपाणि धुँआधार, शंकर कैलाश त्याग बसें सँग भवानी ॥ जय जय जगदम्ब० ॥

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।
सर्ववेदेषु यज्ज्ञानं तत्सर्वं नर्मदातटे ॥ (श्रीशंकराचार्यैः)

सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानादिसे होनेवाला पुण्य तथा समस्त यज्ञोंके हो चुकने पर जो फल, एवं समग्र वेदाध्ययन करनेपर जो ज्ञान मिलता है, वह सब नर्मदाजीके तट पर विद्यमान है। अर्थात् रेवातट पर निवास करनेसे भोग और मोक्ष दोनों सुलभ हो जाते हैं ॥९॥

नाशयतु दुरितमखिलं भूतं भव्यं भवच्च भुवि भविनाम् ।
सकल-पवित्रित-वसुधा पुण्यजला नर्मदा भाति ॥१॥
तटपुलिनं शिवदेवा यस्या यतयोऽपि कामयन्ते वा ।
मुनिनिवह-विहित-सेवा शिवाय मम जायतां रेवा ॥२॥

प्रातःस्मरणं मङ्गलाचरणञ्च

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ।
यत्स्वप्न-जागर-सुषुप्तिमवैति नित्यं, तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः ॥
प्रातर्भजामि मनसो वचसाम गम्य, वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण ।
यन्नेति नेति वचनैर्निगमा अवोचुः, तं देव-देवमजमच्युतमाहुरग्रथम् ॥
प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं, पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ, रज्ज्वां भुजङ्गम इव प्रतिभासितं वै ॥३॥

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम् ।
प्रातःकाले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम् ॥४॥

यस्यानुग्रह-ममराः प्रवरा निखिला नराश्च वाञ्छन्ति ।
विघ्नविदारण-देवं प्रथमं गिरिजागिरीशजं वन्दे ॥५॥

ॐनमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्तये ।
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ॥६॥

मङ्गलं भगवान् शम्भुर्मङ्गलं वृषभध्वजः ।
मङ्गलं त्र्यम्बको देवो मङ्गलायतनं हरः ॥७॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोस्तुते ॥८॥

मङ्गलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः ।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनं हरिः ॥९॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वजः ।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यं मङ्गलं कुरु ॥१०॥

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे, जगत्प्रसूति-स्थिति-नाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे, विरञ्चि-नारायण-शङ्करात्मने ॥११॥

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी, भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः, कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥१२॥

बृहत् नर्मदामाहात्म्य

इयं माहेश्वरी गङ्गा महेश्वरतनूद्भवा।
प्रोक्ता दक्षिणगङ्गेति भारतस्य युधिष्ठिर ॥१॥
जाह्नवी वैष्णवी गङ्गा ब्राह्मी गङ्गा सरस्वती।
इयं माहेश्वरी गङ्गा रेवा नास्त्यत्र संशयः ॥२॥

महेश्वर के दिव्य शरीरसे प्रकट होनेसे यह नर्मदा माहेश्वरी गङ्गा और हे युधिष्ठिर! भारतके दक्षिण भागमें विद्यमान होनेसे इसे दक्षिण-गङ्गा भी कहते हैं। भागीरथी गङ्गा वैष्णवी गङ्गा, सरस्वती ब्राह्मी गङ्गा तथा यह नर्मदा निस्सन्देह साक्षात् शाङ्करी गङ्गा है।

यथाहि पुरुषे देवस्त्रैमूर्तत्वमुपाश्रितः।
ब्रह्माविष्णुमहेशाख्यं स भेदस्तत्र वै यथा ॥३॥
तथा सरित्त्रये पार्थ भेदं मनसि मा कृथा।

जिस प्रकार एक ही परमेश्वर पुरुष विग्रहमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव-रूप तीन मूर्तिवाला हो जाता है, स्वरूप से उनमें भेद नहीं है! उसी प्रकार हे कौन्तेय! इन तीनों देव नदियोंमें भेदबुद्धि नहीं करनी चाहिए। क्योंकि 'नद्यस्तिस्त्रस्त्रिदेवताः' देव भी तीन हैं और उनकी अनुग्रहीमूर्ति नदी भी (सरस्वती, गङ्गा, नर्मदा तीन ही हैं।

त्रिभिः सारस्वतं पुण्यं सप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नर्मदा ॥४॥
गङ्गा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥५॥

सरस्वतीका जल तीन दिनमें, यमुना-जल एक सप्ताहमें तथा गंगाजल स्नान करनेसे तुरन्त ही पवित्र करता है। किन्तु श्री नर्मदा दर्शन मात्रसे ही पवित्र करती है। गङ्गा कनखल (हरद्वार) में, सरस्वती कुरुक्षेत्रमें

विशेषतया पुण्यरूप है, पर नर्मदा ग्राममें, वनमें कहीं भी बहे, वह सर्वत्र पुण्यमयी मानी जाती है।

समुद्राः सरितः सर्वाः, कल्पे-कल्पे क्षयं गताः।
सप्त कल्पक्षये क्षीणे न मृता तेन नर्मदा ॥६॥

प्रलयकालमें समस्त सागर एवं सभी सरितायें स्वरूपसे क्षीण होकर नष्ट हो जाती हैं, किन्तु सात कल्पपर्यन्त यह रेवा नष्ट नहीं हुई अतः इसका नाम नर्मदा (न मरनेवाली) प्रसिद्ध हुआ। जो मनुष्य नर्मदामें विधिवत् स्नान-दान-जप-होम-अर्चन-सेवा आदि इनके निमित्त करता है, वह निस्सन्देह अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है।

रेवायां स्नानदानादि जपहोमार्चनादिकम्।
यः कुर्यान्मनुजः श्रेष्ठः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥७॥
स्मरणाज्जन्मजं पापं दर्शनेन त्रिजन्मजम्।
स्नानाज्जन्मसहस्राख्यं हन्ति रेवा कलौ युगे ॥८॥ (रेवाखंडे)

कलियुगमें स्मरण से जन्मभरके पाप, दर्शनसे तीन जन्मके और स्नान करनेसे हजार जन्मोंके पापोंको नर्मदा नष्ट करती है। स्कन्द पुराणमें कहा है कि कलियुगके पाँच हजार वर्ष व्यतीत होनेपर गङ्गाजीका समस्त माहात्म्य नर्मदामें सम्मिलित हो जायगा। (गङ्गाकी धाराको नर्मदामें जोड़नेकी बात तो होनेही लगी।)

भगवान् सदाशिवकी इला नामकी कला यह नर्मदा है। जो समस्त पापोंको निवारण करनेवाली तथा संसार सागरसे तारनेवाली भी कही है। स्वयं देवाधिदेव महादेव नित्य नर्मदाका सेवन करते हैं। अतएव ब्रह्म-हत्या जैसे पातकोंको हरनेवाली अति पवित्र शिवसरिता है। शङ्करने 'मे कला इति' मेरी कला यह कहा अतः नर्मदाका नाम मेकला पड़ा। दैत्यदानवोंको ध्वस्त करनेवाली जरामृत्युसे रहित नर्मदा अमृतस्वरूपा अत्यन्त श्रेष्ठ देवनदी है। शिवने कहा सरिताएँ सभी ओर हैं, तीर्थ भी हजारों, परन्तु मुनीश्वरो! रेवाकी बराबरी कोई

नहीं करते ऐसा मेरा मत है। यह तो सुनिश्चित है जीव मात्र के कल्याण के लिए धरापर शिवजीने अपने दिव्यदेहसे कोई अलौकिक शक्ति ही सरिता रूपमें उतारी।

स्कान्द-रेवा खण्ड के चतुर्थ अध्याय में वर्णित है—लोक हितार्थ किसी समय भवानी सहित शङ्करने शान्तिस्वरूप रहकर भी विपुल तप किया। सर्वभूतमय चराचर जगत्को वशमें रखनेवाले भूतभावन ऋक्ष शैलपर जाकर स्थित हो गये। उस समय तप करते हुए महादेवके दिव्य देहसे पसीना बहा। यह अत्यधिक मात्रा में प्रगट होकर शैल शिखर के ऊपर बहने लगा। उसीसे अति पुण्यशालिनी नर्मदा प्रगटी। उस समय सतयुग में उस कन्या ने महादेवजीके समक्ष दीर्घकाल तक तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया। प्रसन्न हुए शिवजी की आज्ञा पाकर देवीने वहाँ अनेक वरदान माँगे। वही वरदान नर्मदाजीकी सबसे बड़ी महिमा प्रगट करने वाले बृहत्माहात्म्य स्वरूप हो गये!

नर्मदाने कहा—प्रलय कालमें चराचर जगत् के क्षीण हो जानेपर भी मैं आपकी कृपासे अक्षय बनी रहूँ। सरिता सागर और समस्त शैल वनादि के नष्ट हो जानेपर भी मैं अक्षीण अर्थात् नित्य स्थिर रहूँ—

प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावर-जंगमे।
प्रसादात्तव देवेश! अक्षयाऽहं भवे प्रभो॥
सरित्सु सागरेष्वेव पर्वतेषु क्षयिष्वपि।
तव प्रसादाद् देवेश पुण्याऽक्षया भवे प्रभो॥४.२०-२१॥

पातकी क्या महापातकी जन भी श्रद्धा भक्तिसे मुझमें स्नान करके सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाँय यह हमें वरदान दें॥२२॥

ब्रह्महत्यादिक पाप भी यदि किसीका कुछ हो वह एक मास स्नान मात्र से विनष्ट हो जाये। समस्त वेदपाठसे जो फल और समस्त यज्ञोंके करनेसे जो फल जनोंको प्राप्त होता है वह सब स्नान मात्रसे जीव को मिले यही मेरी मनसा है। सभी दान और उपवास करके तथा समस्त तीर्थों में

अवगाहन करने से जो फल प्राप्त होता है वह सब मेरे जल से ही प्राप्त हो जाय। मेरे तटपर निवास करते हुए जो महेश की अर्चना करें वे शिवलोक के अधिकारी हों ॥२६-२९॥

मम कूले महेशान उमया सह दैवतैः।
वस नित्यं जगन्नाथ एष एव वरो मम ॥४ ३०॥

और हे महेश्वर ! हे विश्वनाथ ! मेरे तटपर सब देव समूह सहित गिरिजा के संग सदैव आप निवास करें यही सब वरदान मुझे मिलें। सत्कर्म करने वाले असत्कर्मकारी भी तथा शान्त और दान्त अर्थात् जितेन्द्रिय जीव मेरे जल में मरकर अमरावती (स्वर्ग) में पहुंचें।

त्रिषु लोकेषु विख्याता महापातकनाशिनी।
भवामि देव देवेश प्रसन्नो यदि मन्यसे ॥४.३१॥
एतांश्चान्यवरान् दिव्यान् प्रार्थितो नृपसत्तम।
नर्मदायास्ततः प्राह प्रसन्नो वृषवाहनः ॥४.३२॥

हे देव देवेश ! यदि आप प्रसन्न हुए हैं तो मैं तीनों लोकों में महापातकों का नाश करने वाली प्रसिद्ध हो जाऊँ।

हे नृपश्रेष्ठ ! इनसे अतिरिक्त अन्य वरों को चाहने वाली नर्मदा की प्रार्थना से तब प्रसन्न हुए नन्दीपर सवार शिवजी बोले—

एवं भवतु कल्याणी यत्त्वयोक्तमनिन्दिते।
नान्या वरार्हा लोकेषु मुक्त्वा त्वां कमलेक्षणे ॥
यदैव मम देहात्त्वं समुद्भूता वरानने।
तदैव सर्वपापानां मोचिनी त्वं न संशयः ॥(३४-३४)

हे सुशोभने ! हे कल्याणी ! कमललोचने ! तुम्हें छोड़कर तीनों लोकों में अन्य कोई ऐसे वरदान पाने योग्य नहीं ! हे वरानने ! मेरी देह से जब तुम प्रगट हुई थी तभीसे समस्त पापों को विनष्ट करनेवाली रही इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। जो मनुष्य तुम्हारे उत्तरतटका देहावसान पर्यन्त विशेष संकटकाल तथा प्रलयकालमें आश्रय लिए रहेंगे वे

तथा कीट पतंग क्या वनस्पति वर्ग अर्थात् उद्भिज्ज जीव भी सद्गति प्राप्त करेंगे अर्थात् सुलोक के अधिकारी होंगे। एवं जो धर्मपरायण द्विजवर्ग मृत्युपर्यन्त दक्षिणतटका आश्रय लेकर रहेंगे वे सब पितृलोक के अधिकारी होंगे। और हम भी तुम्हारे चाहने से तथा अन्य कारणोंसे भी सदैव उमाके सहित तुम्हारे तटपर निवास करेंगे यह सुनिश्चित है। इसी प्रकार हे महादेवि! ब्रह्मा इन्द्र चन्द्र वरुण साध्यगणादि देवताओंके सहित विष्णु भी मेरी आज्ञासे तुम्हारे उत्तरतट पर निवास करेंगे। तथा पितृगणोंके सहित अन्य देवता भी हे सुर-सुन्दरि! मेरे साथ दक्षिण तटपर जा बसेंगे। हे महाभागे! अब जाओ जाओ मृत्युलोकके सभी मानवोंको पापोंसे प्रमुक्त करो ॥३४-४२॥ इस प्रकार नर्मदाकी महिमा इन सब वरदानोंसे अत्यधिक बढ़ी।

नर्मदाके पन्द्रह नाम

यहीं नर्मदाके पन्द्रह नामोंकी भी चर्चा है—१. नर्मदा, २. त्रिकूटा (चित्रकूटा), ३. दक्षिणगंगा, ४. महती, ५. सुरसा (शोण), ६. कृपा, ७. मन्दाकिनी, ८. महार्णवा, ९. रेवा, १०. विपापा, ११. विपाशा, १२. विमला १३ करभा, १४. रञ्जना, १५. वायुवाहिनी या बालुवाहिनी इन पन्द्रह नामों से इसके पन्द्रह स्रोतकी भी कोई कल्पना करते हैं। जो भी हो, सभी नदियोंमें नर्मदा अत्यधिक पुण्यतोया है। रुद्रदेहसे प्रगट होनेके कारण तथा अन्य सबकी अपेक्षा नर्मदा को अधिक वरदान भी तो मिले हैं ॥ ६-२८ ॥

सरिज्जलं येऽपि पिबन्ति लोके, मुच्यन्ति ते पापविशेषसंघैः।
व्रजन्ति संसारमनादिभावं त्यक्त्वा चिरं मोक्षपदैर्विशुद्धम् ॥९.५१॥

लोकमें जो नर्मदाका जल पीते हैं वे पाप समूहसे मुक्त तो होते ही हैं; अन्तमें जन्म मरणादि अनादि संसारका परित्याग करके दीर्घकाल तक विशुद्ध मोक्ष पदका अनुभव भी करते हैं ॥९.५१॥

जैसी गंगा वैसी ही रेवा और सरस्वती भी। भेद इतना है कि गङ्गा स्नानसे, नर्मदा दर्शनसे, और सरस्वती ध्यान चिन्तनसे समान फल देती है। हे महाभाग! शिवके वरदानके प्रभावसे विद्वानोंने इसे अधिक फल-दायिनी बताया और उन्हीं शिवकी करुणा वरुणालयतासे नर्मदा मृत्युको प्राप्त नहीं होती।

नर्मदातट सुभिक्ष माना गया

एक बार महर्षि मार्कण्डेयके पास जाकर ऋषियोंने पूछा--आप दीर्घायु हैं। इस समय सर्वत्र संकट काल है। भारत भूमि में भी सूखा पडा है सरिताएँ क्या सागर आदि भी सूखते जा रहे हैं। आप त्रिकालज्ञ हैं। वर्तमानकी गति विधिका भी पूरा पता है। हम सब इस समय कहाँ जाँय किसे साथ लें? आप दीर्घायु हैं प्रलयमें भी अमर हुए रहेंगे। हम सबके लिए तो जो उचित स्थान मानते हों उसका निर्देश करें।

मार्कण्डेयजीने कहा---कुरुक्षेत्र या उत्तरप्रदेशादिको त्यागकर अपनी पत्नी पुत्रादिको साथ ले श्रेष्ठ दक्षिण दिशाका आश्रय लो, जो अनेक नगर, ग्राम, गोशालाओंसे सघन बड़े-बड़े कस्बे या शहरोंसे भी सुशोभित है। शैव और वैष्णव तथा सांख्य योगका आश्रय लिए बड़े-बड़े सिद्ध जिसका सेवन किया करते हैं। अनावृष्टिके भयसे पीड़ित तुम सब दोनों तटोंपर आश्रमोंके मध्य ही अपने आवास योग्य देवस्थान युक्त आश्रमोंकी रचना करके जितेन्द्रिय हुए नियमसे रहो। मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयकी बात मानकर ये सब महर्षि अपने अनुचरों सहित नर्मदातीर आकर निवास करने लगे। उन सबोंने देवताओंके सौ वर्षपर्यन्त वहाँ निवास किया। वहाँ हरकी उपासना करते हुए उन्होंने हरि को भी अभिन्न ही पाया। भेदबुद्धि रखनेपर भी उपासकोंके लिए शिव सदैव अभिन्न रहे हैं। शिव एक विशाल वट वृक्षके तुल्य हैं और अन्य सब देवता शाखाओंके समान समझे जाते हैं।

किन्हींने आजीवन, तो कोई बारह वर्ष तथा कुछ छः वर्ष या तीन वर्ष क्या एक वर्ष ही उपासनारत रहे। कोई छः मास क्या तीन मासमें ही सिद्ध हो गये। ऐसे उन मुनियोंने पवित्र नर्मदातीरका आश्रय लेकर संसारके समस्त पापतापादि दोषोंसे मुक्त होकर सनातन ब्रह्म को प्राप्त किया। सैकड़ों हजारों बार घोर कलियुगोंमें नर्मदातटका आश्रय लिये मुनिजन इसी प्रकार शिव सायुज्यको प्राप्त हुए हैं।

ये नर्मदा तीरमुपेत्य विप्राः शैवे व्रते यत्नमुपप्रपन्नाः।
त्रिकालमम्भः प्रविगाह्य भक्त्या देवं समभ्यर्च्य शिवं व्रजन्ति ॥१०.५९॥
ध्यानार्चनैर्जाप्य— महाव्रतैश्च नारायणं वा सततं स्मरंति।
ते धौत-पाण्डुरपटा इव राजहंसाः संसार-सागर-जलस्य तरन्ति पारम् ॥

जो ब्राह्मण नर्मदा को पाकर शैव व्रतमें यत्नपूर्वक निरत रहते हैं वे श्रद्धा भक्तिसे त्रिकाल स्नान सन्ध्या देवार्चन करके अन्तमें शिवको प्राप्त हो जाते हैं। तथा जो जप ध्यान अर्चन आदि साधनोंसे सतत नारायणका स्मरण करते रहते हैं, वे भी धुले हुए स्वच्छ वस्त्र धारे राजहंसोंके समान संसार सागरसे पार हो जाते हैं। अभिप्राय यही है कि नर्मदातट पर चाहे हरको भजो या हरिको सर्वथा कल्याण होना ही है ॥ ५६-६० ॥

व्यासजी ने कहा—यह सत्य है, पुनः कहता हूँ सत्य है, हाथ उठाके कह रहा हूँ बस एक सत्य है—कि नारायण ही सदा ध्यान योग्य सिद्ध होते हैं—

सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्क्षिप्य भुजमुच्यते।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥ ६१ ॥

यो वा हरं पूजयते जितात्मा मासं च पक्षं च वसन्नरेन्द्र।
रेवां समाश्रित्य महानुभावः, स देवदेवोऽथ भवेद् पिनाकी ॥ ६२ ॥

जो जितात्मा नर्मदा तीरका भली-भाँति आश्रय लेकर एक मास या एक पक्ष भी शिवजीका पूजन करता रहता है; वह महानुभाव स्वयं साक्षात् देवाधिदेव महादेव पिनाकपाणि ही हो जाता है ॥ ६२ ॥

कीटाः पतंगाश्च पिपीलकाश्च, ये वै म्रियन्तेऽम्भसि नर्मदायाः।
ते दिव्यरूपास्तु कुलप्रसूताः, शतं समा धर्मपरा भवन्ति ॥६३॥

कीड़े मकोड़े चींटा चींटियाँ भी जो नर्मदा जलमें प्राण त्यागते हैं। वे प्रथम दिव्यरूप होते हैं पश्चात् उत्तम कुलमें जन्म लेकर सौ वर्ष तक धर्मनिष्ठ हुए जीते रहते हैं ॥ ६३ ॥

कालेन वृक्षाः प्रपतन्ति येऽपि, महातरंगौघनिकृत्तमूलाः।
ते नर्मदाम्भोभिरपास्तपापा देदीप्यमानास्त्रिदिवं प्रयान्ति ॥ ६५ ॥

समय पाकर जलप्रवाहके थपेड़ोंसे अपनी जड़ें बिखेर कर जो वृक्ष नर्मदा नीरमें पड़ जाते हैं, वे उस पावनजलसे पापरहित हुए देदीप्यमान दिव्यशरीर धारणकर देवलोकमें चले जाते हैं ॥ ६४ ॥

अकाम-कामाश्च तथा सकामा, रेवान्तमाश्रित्य म्रियन्ति तीरे।
जडान्धमूकास्त्रिदिवं प्रयान्ति, किमत्र विप्रा भवभावयुक्ताः ॥ ६५ ॥

जो मन्द इच्छांसे या तीव्र इच्छासे अथवा बिना किसी इच्छासे नर्मदाका आश्रय लेकर उसके तटपर मृत्युको प्राप्त होते हैं वे अन्ध जड़ मूक भी स्वर्ग चले जाते हैं; फिर भवानी शंकरमें पूर्ण भक्ति भाववाले वैदिक ब्राह्मणोंकी तो बात ही क्या है ?

मासोपवासैरपि शोषितांगा, न तां गतिं यान्ति विमुक्तदेहाः।
म्रियन्ति रेवा जलपूतकायाः, शिवार्चने केशवभावयुक्ताः ॥ ६६ ॥

महीनों उपवास करके अङ्गोंको सुखा देनेवाले मरणोपरान्त उस गतिको नहीं प्राप्त कर पाते, जो रेवाके जलसे पवित्र कायवाले भगवान् शिवकी अर्चामें रत रहे या विष्णुकी भावभक्तिसे युक्त हुए भक्त प्राप्त करते हैं ॥ ६६ ॥

ये नर्मदातीरमनुप्रपन्ना अभ्यर्च्ययित्वा शिवमव्ययाख्यम्।
नारायणं वा मनसा सुपूताः, पिबन्ति मातुर्न पुनः स्तनं ते ॥ ६७ ॥

जो नर्मदा तीर पर बसनेवाले मनसे भी अविनाशी सदाशिव या नारायणकी अर्चा करके पवित्र हुए हैं वे भक्तजन फिर जन्म लेकर माताका दूध पीने नहीं आते। जो दिव्य-रेवातट पर भ्रमण करते हुए त्रिकाल देवार्चनमें लगे रहकर सत्यनिष्ठ हुए हैं; वे पूतकाय फिर मलमूत्र हाड़ चाम या शिराओंका सहारा लिये माताकी कुक्षिमें नहीं आते। बड़े-बड़े

यज्ञ और बहुत दानसे या समस्त तीर्थोंके सेवनसे भी उन्हें क्या है ? जिसका रुद्रगणों ने भी पूर्व में आदर किया उस नर्मदाके उत्तर या दक्षिण तीरका सेवन जिन्होंने प्रारम्भ कर दिया ॥६७-७०॥

ते वञ्चिताः पंगुजडान्धभूता, लोकेषु मर्त्याः पशुभिश्च तुल्याः ।
ये नाश्रिता रुद्रशरीरभूतां, सोपानपङ्क्तिं त्रिदिवस्य रेवाम् ॥७१॥

निस्सन्देह वे लोग ठगे गये या लोकमें अन्धे लँगड़े जड़ मूढ़ हैं अथवा पशुओं जैसे ही हैं, जिन्होंने शिवके शरीरसे प्रगटी रेवा जो कि स्वर्ग की सीढी है उसका आश्रय न् लिया ॥७१॥

युगं कलिं घोरमिमं य इच्छेद् द्रष्टुं कदाचिन्न पुनर्द्विजेन्द्रः ।
स नर्मदातीरमुपेत्य सर्वं सम्पूजयेत् सर्वविमुक्तसंगः ॥७२॥

जो ब्राह्मण पुनः घोर कलियुगको नहीं देखना चाहता वह निस्संग होकर नर्मदा तटपर आकर शिवका भली भाँति पूजन करे ॥७२॥

विघ्नैरनेकैरतियोज्यमाना ये तीरमुज्झन्ति न नर्मदायाः ।
ते चैव सर्वस्य हितार्थभूता वन्द्याश्च ते सर्वजनस्य मान्या ॥७३॥

अनेकों विघ्न बाधाएँ आनेपर भी जो नर्मदा तट नहीं त्यागते वे सबके हितकारी वन्दना योग्य—सर्वजन मान्य महामानव हैं ॥७३॥

भृग्वत्रिगार्गेयवसिष्ठकङ्काः, शतैः समेतैः नियतास्त्वसंख्यैः ।
सिद्धिं परां ते हि जलाप्लुताङ्गाः प्राप्तास्तु लोकान्महतां न चाऽन्ये।७४

महर्षि भृगु गार्गेय वशिष्ठ और कङ्क आदि सैकड़ों असंख्यों अन्य महात्माओं सहित नर्मदा तट पर आकर सिद्धि प्राप्त किये । और अन्तमें नर्मदा जलसे परिपूरित गात्रवाले वे सब दिव्य धामों में गये, जहाँ अन्य जन नहीं जाते ॥७४॥

ज्ञानं महत्पुण्यतमं पवित्रं पठन्त्यदो नित्यविशुद्धसत्वाः ।
गतिं परां यान्ति महानुभावा; रुद्रस्य वाक्यं हि यथा प्रमाणम् ॥७५॥

जो विशुद्ध अन्तःकरणवाले अत्यन्त पुण्यशाली इस वृहत् नर्मदा माहात्म्य ज्ञानको पढ़ते हैं, वे महानुभाव परम उत्तम पद प्राप्त करते हैं । ईश्वरी वेद-वाणीकी भाँति सदा शिवकी यह वाणी भी प्रामाणिक है ।

श्रीनर्मदा सुधानिधि

गिरा मुनीनां तदनल्पकल्पगं, निशम्य माहात्म्यमथोत्तमोत्तमम् ।
विगाह्य मातस्त्वयि चेतनद्रवे, न मोदते कश्च निपीयतेऽमृतम् ॥१॥

हे मातु नर्मदे ! मुनीश्वरोंकी वाणी द्वारा तुम्हारा अनन्त कल्प स्थायी सर्वोत्तम माहात्म्य सुनकर तथा द्रवीभूत हुए तुझ चैतन्य रसमें स्नानकर एवं सुधामय सुस्वादु जलपानकर कौन प्रसन्न नहीं होता ?

विशुद्धकीर्ति प्रथितां समुज्ज्वलां, मनोहरां कल्पषहारिणीं तव ।
शृणोम्यहं देवि तपस्विवर्गतस्त्वदङ्घ्रिसेवाव्रतिनोऽधुनापि च ॥२॥

हे देवि ! भक्त तपस्वियों द्वारा पाप ताप हरनेवाली, विमल लोक प्रसिद्ध, मनोहारिणी, तुम्हारी विशुद्ध कीर्ति को आज भी श्रद्धापूर्वक मैं श्रवण करता रहता हूँ ।

अतो मनो मे भवदेकसंश्रयं, यदा भवत्यः पदपङ्कजं भजत् ।
प्रपश्यदप्यम्बुमयं कलेवरं, न वीक्षितुं ते प्रभवत्यलौकिकम् ॥३॥
यदेव रूपं तव वर्णितं परं, महाद्भुतं दिव्यगुणं महर्षिभिः ।
असंख्यदेवासुरमानवादिषु, कृपाकरं नित्यमभीष्टदं च यत् ॥४॥

अतएव मेरा भी मन तुम्हारे आश्रित रहा तुम्हारे पदपङ्कजरजका सेवन करता हुआ इस समय तुम्हारे पावन जलराशि का ही केवल दर्शन करता है । उस अलौकिकरूप को नहीं देख पाता, जिस अद्भुत तेजस्वी दिव्य सुन्दर स्वरूप का प्राचीन महर्षियोंने वर्णन किया । और जो असंख्य देव-दानव मानव आदि का अनुग्रहकारी एवं सदैव मनवाञ्छित फल देनेवाला रहा है ॥३-४॥

किं वर्ण्यते मन्दधिया तु सा मया, देवा न यस्याः प्रकृतिं विदुर्यतः ।
तथापि दीनैरधनैर्यदर्प्यते गृह्णन्ति सन्तस्तदुपायनं न किम् ॥५॥

जिसका स्वरूप देवता भी नहीं जान सके, मुझ मन्दमतिसे आपके उस रूपका क्या वर्णन हो सकता है ? फिर भी दीन निर्धनों द्वारा दी गई भेंट क्या महापुरुष अङ्गीकार नहीं करते ? करते ही हैं ॥५॥

आविर्भाव और नामका रहस्य

पुरा सुरैरार्तजनाभिवन्दितैर्दयान्वितैस्तैः शरणीकृतः शिवः ।
तस्माच्च कारुण्यरसेन रञ्जितात्, रेवाऽवतीर्णाखिललोकपावनी ॥६॥

प्राचीनकालमें दुखी मनुष्योंने देवताओं से प्रार्थना की । वे देवता कृपा-वश भगवान् सदाशिवकी शरण गये । तब करुणारससे द्रवित एवं प्रसन्न हुए उनके शरीरसे सबको पवित्र करनेवाली नर्मदा प्रकटी ॥६॥

राजर्षिवर्योऽपि पुरूरवास्तथा, कल्पान्तरे कर्मपरायणा नृपाः ।
निरीक्ष्य तापातुरचेतसो जनान्, बभूवुरुद्धारविसक्तमानसाः ॥७॥

राजर्षि श्रेष्ठ पुरूरवा तथा कर्मनिष्ठ हिरण्यरेता आदि अन्य कल्पोंमें होनेवाले राजर्षियोंने भी विविध पाप-तापसे पीड़ित प्रजाको देख उसके उद्धारमें मन लगाया ॥७॥

चिरं समाराध्य निवेदितेन तैर्जगद्भवं कष्टभरं तपस्विभिः ।
अशेषदीनोद्धरणैकचेतसा तदापि सर्वार्तिहरेण शम्भुना ॥८॥
महाप्रभापुञ्जमयी महीयसी, गरीयसी दिव्यगुणैर्महेश्वरी ।
कृपाकरी दैन्यहरी च शाङ्करी निःशेषशोकार्णवतारिणीतरी ॥९॥
सोमोद्भवा तापनिवारिणी मणिः, अनन्तपापाचलपातनः पविः ।
महीमहानन्दविवर्धिनो निधिर्नाकस्य नृणामधिरोहिणी धुनी ॥१०॥
महीव सुश्यामलकान्तिशोभनी, सुहासिनी नक्रविहारिणी शुभा ।
दिव्याम्बरा दिव्यविभूषणायुधा, श्रीनर्मदासाववतारिता भुवि ॥११॥

उन तपस्वी शिरोमणियोंने दीर्घकाल तक शिवजीकी आराधना करके समस्त जीव जगत्का कष्ट निवेदन किया । तब सभी दीनदुःखी प्राणियोंके उद्धारमें मन लगाये रखनेवाले एवं सर्वदुःख हरनेवाले उन हरने विशाल तेजोराशि, अत्यन्त श्रेष्ठ, दिव्यगुण गरिष्ठ, कृपा करनेवाली एवं दीनता हरनेवाली तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको शोकसागरसे तारनेवाली, तापहारिणी चिन्तामणिके समान, घोर पापरूप पर्वतोंको विचूर्ण कर डालनेमें वज्रके समान, और भूतलपर महान् आनन्द बढ़ानेवाली निधिके समान तथा मानवोंके

लिए स्वर्गकी नसेनीके समान, हरित सुश्यामला भूमिकी भाँति सुन्दर कान्तिवाली, मनोहर मुसकान युक्त मगरपर विहरनेवाली, दिव्य वस्त्राभूषणों और आयुधों से अलंकृत, श्रीनर्मदाजीको प्रगट किया ॥८-११॥

शिवाज्ञया दिव्यपयस्विनी महासरित्स्वरूपा त्वरितं बभूव सा ।
स्वरापतन्त्या निजरंहसा तया, संप्लावितं पूर्वमहो इदं जगत् ॥१२॥

शिवजीकी आज्ञासे उस कन्याने तुरन्त दिव्य जलवाली विशाल सरिता का स्वरूप धारण किया । आश्चर्य है ! वह स्वर्गसे उतरती हुई अपने प्रबल वेगद्वारा प्रथम इस जगत्को डुबोने लग गयी । अर्थात् अपने प्रबल प्रतापको प्रगट करनेमें उसे संकोच नहीं हुआ ॥१२॥

महद् भयं देवगणाः प्रपेदिरे, रेवां निरीक्ष्योग्रतरां ततः स्तवैः ।
प्रसादिता साप्युपसंहृतत्वरा, विराजतेऽद्यापि च मोदिताऽमरा ॥१३॥

रेवाका उग्ररूप देखकर देवता भयभीत हो गये । उन्होंने उसे स्तुतियों से प्रसन्न किया । नर्मदाने अपने वेगको मन्द कर लिया । देवता आनन्द विभोर हो उठे । अतः आज भी वह उछलने कूदने वाली रेवा नामसे विराजमान है ॥१३॥

विरञ्चिसर्गप्रलयेषु सप्तसु चराचरे देवि लयङ्गतेऽखिले ।
शिवप्रसादेन मृकण्डुसूनुना नित्यस्वरूपं तव वीक्षितं किल ॥१४॥

हे देवि ! स्थावर जंगम सभी प्राणियों सहित विधाता की सृष्टिका सात बार प्रलय होनेपर भी प्रलयंकर शंकरकी कृपासे महर्षि मार्कण्डेय ने आपका स्थायी सनातन स्वरूप देखा, यह प्रसिद्ध है ॥१४॥

मृता न यस्मात् प्रलयेषु दव्यतः, शिवेन संज्ञा तव नर्मदा कृता ।
दिव्यं सुखं नर्मपदं ददासि यत्, ततोऽपि चान्वर्थकमम्ब नाम ते ॥१५॥

हे भगवती ! कल्प कल्पान्त रोंमें भी जब तुम मृत नहीं हुई, तभी शिवजीने तुम्हारा नाम नर्मदा रखा और तुम नर्म अर्थात् दिव्य सुख भी देती हो इससे भी नर्मदा नाम सार्थक है ॥१५॥

अनन्तलीलागुणधामविग्रहे, नित्याप्यनित्येव विभासि भूतले ।
ऋषिस्वरूपाचलमेकलस्य तत्कन्यात्मना त्वं प्रकटीबभूविथ ॥१६॥

अनन्त लीला गुण और धाम स्वरूपवाली हे नर्मदे ! वस्तुतः तुम नित्य होती हुई भी भूतलपर अनित्य सी दिखाई देती हो। ऋषि रूप मेकल पर्वतकी तुम कन्या भी बन गयी और नर्मदा नाम भी अमर बनाये रहती हो, धन्य है ॥१६॥

विशेषता

गङ्गापि पुण्या यमुनापि पुण्या, पुण्याश्च धन्याः सरितोऽप्यगण्याः ।
तत्तत्प्रदेशे निखिलास्तु पुण्याः, सर्वत्र पुण्या खलु नर्मदेयम् ॥१७॥

यद्यपि पवित्र जलवाली गंगा यमुना आदि अनेकों पुण्यप्रदा श्रेष्ठ देवनदियाँ धन्य और मान्य इस धरा पर हैं। परन्तु वे सब किन्हीं स्थान विशेषमें ही अधिक पुण्य प्रगट करती हैं। और यह देवी नर्मदा सर्वत्र समानरूपसे पुण्यशीला प्रसिद्ध हो रही है ॥१७॥

वनान्तभूमौ गिरिगह्वरेषु, ग्रामेष्वरम्येष्वपि तीर्थधात्री ।
श्रीनर्मदेयं दिशि दक्षिणस्यां, पुरारिगंगा भुवनं पुनाति ॥१८॥

श्री नर्मदा वनभूमि, गहन गिरि, गुहाओं तथा ऊबड़-खाबड़ ग्रामों को भी तीर्थ रूप देती हुई दक्षिण दिशामें यह त्रिपुरारिको प्रिय लगनेवाली शिवगङ्गा त्रिभुवन जनको आज भी पवित्र कर रही है ॥१८॥

यथ्युत्तरे विष्णुपदी विराजते, कुरुस्थले ब्रह्मवधू सरस्वती ।
मध्यप्रदेशेऽघहरी च शाङ्करी, तनोति मोदं किल नर्मदा सदा ॥१९॥

उत्तर प्रदेशमें विष्णु पादोद्भवा गङ्गा, कुरुक्षेत्रमें ब्रह्माजीकी प्रिया सरस्वती सुशोभित है और मध्य प्रदेशमें सम्पूर्ण पाप तापोंको हरनेवाली शाङ्करी श्री नर्मदा सदैव आनन्दवर्द्धिनी प्रसिद्ध हो रही है ॥१९॥

श्रुतप्रभावाः श्रुतिशास्त्रसम्मतं, तपो विधातुं तव तीरमागताः ।
निपीय पीयूषनिभं पयश्च ते, विधूय तापं निजरूपमाप्नुवन् ॥२०॥

हे नर्मदे ! कितने ही लोग तुम्हारा प्रभाव सुनकर वेदशास्त्रानुमोदित तपकी सिद्धिके लिए तुम्हारे तटपर आये और अमृतके समान जल पीकर तापोंसे निवृत्त हुए स्व-स्वरूपको प्राप्त हो गये ॥२०॥

आचार्यवर्या अपि शङ्करार्या, अव्यक्तचर्या मुनयस्तथाऽन्ये।
श्रीसद्गुरु प्राप्य विमुक्तकार्या मुक्ता अभूवन् ननु सन्निधौ ते ।।२१।।

अविदितवृत्तान्त अनेकों ऋषि और मुनि तथा आचार्यप्रवर श्रीशङ्कराचार्य भी तुम्हारी सन्निधिमें सद्गुरु शरण प्राप्त होकर कृतकृत्य हुए-मुक्त हो गये इसे कौन नहीं जानता ? ।।२१।।

विरक्तसंघा मुनयस्तपोधना जनास्तथाऽन्ये विविधाभिलाषिणः।
अशेषदेशानपहाय ते तटे वसन्ति कर्तुं सफलान् मनोरथान् ।।२२।।

वैराग्यशील तपस्वी मुनिगण तथा नाना प्रकारकी अभिलाषा रखनेवाले साधारणजन भी अन्य सब देशोंका परित्यागकर मनोरथ सिद्धिके लिए तुम्हारे तटपर निवास करते हैं ।।२२।।

सन्त सदा ते विचरन्ति पावने, कूलेऽतिरम्ये तव दर्शनेप्सवः।
त्यक्त्वा सुखं लौकिकमाहितव्रताः, प्रीतिं बितन्वन्ति च नर्मदे त्वयि ।।२३।।

हे नर्मदे ! तुम्हारे अत्यन्त रमणीक पवित्र प्रदक्षिणा पथमें नियमित जीवन धारण करते हुए अनेकों सन्त विचरते हैं। वे दर्शनेच्छुक लौकिक सुखका परित्यागकर प्रसन्न हुए तुम्हारे स्वरूपमें ही प्रीति बढ़ाते हैं।

पुरापि मर्त्यैर्दिविजैस्तपोधनैराब्रह्ममाकीटमशेषजन्तुभिः।
समाश्रिता वारयितुं दुरात्मतां दुःखं च दोषं दुरितञ्च नर्मदा ।।२४।।

प्राचीन कालमें भी ब्रह्मासे लेकर साधारण प्राणीपर्यन्त सभी देवदानव मानव, आदि तपस्वीगण अपने दुस्स्वभाव, दुःख, दोष और पापादिकी निवृत्तिके लिए नर्मदाका ही आश्रय लिये ।।२४।।

तथापि मातस्त्वदनुग्रहं विना, न कोऽपि विद्यान्महिमानमान्तरम्।
विना च बोधेन कुतो रतिस्ततस्तवाङ्घ्रिपङ्केरुहमाश्रयाम्यहम् ।।२५।।

फिर भी हे माता ! तुम्हारे अनुग्रह बिना तुम्हारी आन्तरिक महिमाको कौन जान सकता है ? और बिना जाने प्रीति नहीं होती, अतः तुम्हारे पादरविन्दोंका ही मैं आश्रय लेता हूँ ।।२५।।

येन प्रभावोऽम्ब विलोकितस्तव, पुण्यप्रकर्षाद् यदि भक्तिमानभूत्।
किमस्ति चित्रं शरणागतोऽपि सः त्वत्तीरमिच्छन्ति मृता जना अपि ।।२६।।

हे देवि ! अतिशय पुण्यसे जिसने तुम्हारा प्रभाव जाना और यदि वह भक्तिमान् हुआ तुम्हारी शरण आगया तो इसमें आश्चर्य क्या ? जब कि मरकर भी प्राणी तुम्हारी सन्निधि सदैव चाहते हैं ॥२६॥

वनेचराश्चारुविचारवर्जिताः, सदा सदाचारपराङ्मुखाश्च ये ।
तेऽपि त्वदीयं सलिलं सुधानिभं, विलोक्य गायन्ति गुणान् यशश्च ते ॥

सदाचार और श्रेष्ठ विचारहीन वनमें विहरनेवाले जो जङ्गली लोग हैं वे भी तुम्हारा सुधासम सलिल देखकर तुम्हारे पवित्र यश और गुणोंका गान करने लग जाते हैं ॥२७॥

कृष्णाः कुरंगाः सहचारिसङ्गा, मत्ता विहङ्गा मुदितान्तरंगाः ।
तरङ्गभङ्गानवलोकयन्तः, क्रीडन्ति मातंगगणास्तवाङ्के ॥२८॥

हे माता ! काले-काले हरिण अपनी सहचरियोंके संग एवं प्रसन्न आशयवाले उन्मत्त विहंग तथा मदमाते अनेकों मातंग (हाथी) तरंग भंगोंका अवलोकन करते हुए तुम्हारी गोदमें क्रीड़ा करते हैं ॥२८॥

अभिलाषा

रेवे तवानन्दकरं मनोहरं, महेशकारुण्यसुधासमन्वितम् ।
प्रसादसौहार्दगुणाञ्चितं च ते, कदा स्वरूपं शिवदं विलोकये ॥२९॥

हे नर्मदे ! मैं कब आनन्दकारी मनोहारी महादेवकी अपार कृपा सुधासिक्त एवं प्रसन्नता और बढ़ी हुई सुहृदयता आदि गुणोंसे युक्त, जीवोंका मंगलमय तुम्हारे दिव्य स्वरूपका दर्शन करूँगा कहो ?

सोमोद्भवे त्वद्रसपायिनो न के सुरासुराधीशनराः खगादयः ।
मनोऽनुकूलां गतिमाप्नुवन्मुदा तव प्रसादादहमेव वञ्चितः ॥३०॥

अमृतमय स्थान उत्पन्न करनेवाली हे देवि ! देव-दानव-राजा-प्रजा ही क्यों पशु-पक्षी आदि भी प्रसन्न हुए तुम्हारा दिव्य रसपान कर मनोऽनुकूल गति प्राप्त कर लिये बस तुम्हारी कृपासे केवल अब मैं ही वञ्चित हूँ ।

तपःप्रभावाद् यदि लेभिरे गतिं, मनो मदीयं तपति त्वया विना।
अहर्निशं देवि विचिन्तयाम्यहं, कदा कृपा मय्यपि मातुरस्तु ते ॥

यदि कहा जाय वे सब तपके प्रभावसे सद्गति प्राप्त किये, तो मेरा भी मन तुम्हारे बिना सन्तत तप रहा है। हे देवि! निशदिन यही चिन्तन करता हूँ कि माताका मुझपर कब अनुग्रह होगा ॥३१॥

अभ्यर्थना

रेवे कृपा किन्न विधीयते त्वया दीनो भवत्येष जनः प्रतीक्षते।
दृष्ट्वा रुदन्तं शिशुमात्मजं न किं कारुण्यपूर्णा जननी त्वरायते ॥३२॥

हे मातु नर्मदे! तुम कृपा क्यों नहीं करती? दीन हुआ यह प्राणी सदैव प्रतीक्षाकर रहा है। बिलखते हुए अपने निराधार शिशुको देखकर भी करुणामय माँ क्या आतुर हुई नहीं अपनाती? ॥३२॥

आकृष्यते देवि दयार्द्रभावया जनस्त्वया दूरतरं गतोऽप्यहो।
त्वदङ्कशय्याशरणाश्रितः शिशुः क्षुत्तृड्युतः सन् पयसा न तृप्यते ॥३३॥

हे देवि! दयासे द्रवीभूत हुई तुम दूर गये जनको भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हो, किन्तु आश्चर्य है कि भूखा प्यासा तुम्हारी गोदमें पड़ा हुआ शिशु तुम्हारे अमृतमय पयसे तृप्त नहीं हो पाता ॥३३॥

मनोगतो नैव समर्चनाविधिर्नुतिं न वाचापि च साधितुं क्षमः।
यथा भवत्यो हृदयं द्रवीभवत् कृपां विधत्ते रहितस्तयाप्यहम् ॥३४॥

हे नर्मदे! तुम्हारी अर्चाविधि भी भलीभाँति मेरे हृदयगत नहीं हो सकी और न स्तुति करने में वाणी ही समर्थ हुई। जिस भाँति तुम द्रवीभूत होकर जनपर कृपा करती हो उससे भी मैं सर्वथा हीन हूँ ॥३४॥

परानुकम्पा तव नानुभूयते, यतो हि लोका विषयेषु सस्पृहाः।
असीममाधुर्यसुधां पिबन् बुधः को नाम हालाहलमत्तुमीहते ॥३५॥

तुम्हारा परमोत्तम प्रसाद न प्राप्तकर पानेसे ही प्राणी विषयोंकी आकांक्षा करते हैं। अपार माधुरी सुधाका पान करता हुआ कौन बुद्धिमान् हलाहल विष खानेकी चेष्टा करेगा? ॥३५॥

भोगेषु मूढः क्षणभङ्गुरेष्वहो, प्रीतिं विधत्ते न तु पारमेश्वरीम् ।
यस्याः फलं जन्ममृतिर्मुहुर्मुहुस्तां दुःखमूलां जहि देवि नर्मदे ।।३६।।

आश्चर्य है ! मूढ़ मनुज, क्षण भङ्गुर विषयोंमें प्रीति करते हैं, परमेश्वरमें नहीं । हे देवि नर्मदे ! जिसका फल बारम्बार जन्मना मरना ही है ऐसे दुःखकी जड़रूप संसार का समुच्छेद शीघ्र करें ।।३६।।

पुण्याऽतिरम्या त्रिदशैः सुपूजिताः धन्या च मान्या निखिलैर्महर्षिभिः ।
भूतेशकन्या जयतादनारतं, नान्या वरेण्या मम देवि नर्मदे ।।

समस्त मुनि महर्षियोंकी मान्या, देवताओंसे सुपूजित, पुण्यशीला अत्यन्त रमणीय, महेश्वरकी कन्या नर्मदाजी धन्य हैं । सदा ही तुम्हारी जय हो । हे देवि नर्मदे ! मुझे तो तुम्हीं एक पूजनीय प्रतीत होती हो ।।३७।।

नमो नर्मदायै निजानन्ददायै, नमः शर्मदायै शमाद्यर्पिकायै ।
नमो वर्मदायै वराभीतिरायै, नमो हर्म्यदायै हरं दर्शिकायै ।।३८।।

निजानन्द प्रदान करनेवाली नर्मदाको नमस्कार है । शम दमादि शुभ साधनोंको देनेवाली नर्मदाको नमस्कार है । अभय वरदान देनेवाली नर्मदाको नमस्कार है एवं सभी ओर हरका दर्शन करानेवाली हर्म्यदानाम नर्मदाको सदैव नमस्कार है ।।३८।।

त्वदीयं जलं येन पीतं च गीतं प्रभूतं यशश्चारु पूतं श्रुतं वा ।
यमस्यापि लोकादभीतेन तेन, श्रितं धाम शैवं नवं वैभवं धा ।।३९।।

तपोमूर्ति-ओंकारानन्द स्वामिविरचिता
नर्मदा सुधानिधिः सम्पूर्णा ।

जिसने हे देवि नर्मदे ! तुम्हारा पवित्र जल पिया, एवं प्रचुर पवित्र यश कानोंसे श्रवण किया; वह यमलोकसे भी निडर हुआ शिव धामका आश्रय लेता है और नित्य नूतन वैभव प्राप्त करता है ।।३९।।

भगवत्पादश्रीमदाद्य शंकराचार्य स्वामिविरचितं—

नर्मदाष्टकम्

सविन्दुसिन्धु-सुस्खलत्तरङ्गभङ्ग-रञ्जितं,
द्विषत्सुपापजात-जातकारि-वारिसंयुतम् ।
कृतान्त-दूतकालभूत-भीतिहारि वर्मदे,
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥१॥

अपने जल बिन्दुओंसे सिन्धुकी उछलती हुई तरंगोंमें मनोहरता लानेवाले तथा शत्रुओंके भी पाप समूहके विरोधी और कालरूप यमदूतोंके भयको हरनेवाले, अतएव सबभाँति रक्षा करनेवाली–हे देवि नर्मदा ! तुम्हारे जलयुत चरण कमलोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१॥

त्वदम्बु-लीनदीन-मीन-दिव्यसम्प्रदायकं,
कलौ मलौघ-भारहारि सर्वतीर्थनायकम् ।
सुमत्स्य-कच्छ-नक्र-चक्र-चक्रवाक-शर्मदे ॥ त्वदीयपाद पंकजं० ॥२॥

तुम्हारे जलमें लीन हुए उन दीन हीन मीनोंको अन्तमें स्वर्ग देनेवाले और कलियुगकी पापराशिका भार हरनेवाले, समस्त तीर्थोंमें अग्रगण्य अतः मच्छ कच्छ आदि जलचरों तथा चकइ चकवा आदि नभचर प्राणियोंको सदैव सुख देनेवाली हे देवि नर्मदे ! तुम्हारे चरणारविन्दोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२॥

महागभीर-नीरपूर-पापधूत-भूतलं,
ध्वनत्-समस्त-पातकारि-दारितापदाचलम् ।
जगल्लये महाभये मृकण्डुसूनु-हर्म्यदे ॥ त्वदीयपाद पंकजं० ॥३॥

महान्, भयंकर संसारके प्रलयकालमें महर्षि मार्कण्डेयको आश्रय प्रदान करनेवाली हे देवि नर्मदे ! अत्यन्त गम्भीर नीरके प्रभावसे पृथ्वी तलके पापोंको धोनेवाले तथा समस्त पातक रूप शत्रुओंको ललकारते हुए विपत्तिरूप पर्वतोंको विदीर्ण करनेवाले तुम्हारे पादपद्मोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३॥

गतं तदैव मे भयं त्वदम्बु वीक्षितं यदा,
मृकण्डसूनु-शौनकासुरारिसेवि सर्वदा ।
पुनर्भवाब्धि-जन्मजं भवाब्धि-दुःखवर्मदे ।। त्वदीयपाद पंकज० ।।४।।

सदैव मार्कण्डेय शौनक आदि मुनियों तथा सुरगणोंसे सेवित जब आपके दिव्य जलका दर्शन किया, तभी संसारमें बारम्बार जन्म-मरणादिसे होनेवाले मेरे सभी भय भाग गये। अतएव भव-सिन्धुके दुःखोंसे बचानेवाली हे देवि नर्मदे ! तुम्हारे पाद पद्मोंको मैं प्रणाम करता हूँ ।।४।।

अलक्ष-लक्ष-किन्नरामरासुरादिपूजितं,
सुलक्ष. नीरतीर-धीरपक्षि-लक्षकूजितम् ।
वशिष्ठशिष्ट-पिप्पलाद-कर्दमादि शर्मदे ।। त्वदीयपाद पंकजं० ।।५।।

महर्षि वशिष्ठ श्रेष्ठ पिप्पलाद कर्दम आदि प्रजापतियोंको सुख देनेवाली हे देवि नर्मदे ! अदृश्य लाखों किन्नरों सुरों और नरोंसे पूजित, तथा प्रत्यक्ष तुम्हारे तीरपर बसनेवाले लाखों धीर पक्षियोंकी सुरीली ध्वनिसे गुञ्जायमान आपके चरणकमलोंको मैं प्रणाम करता हूँ ।।५।।

सनत्कुमार-नाचिकेत कश्यपात्रि-षट्पदै-
धृतं स्वकीयमानसेषु नारदादिषट्पदैः ।
रवीन्दु-रन्तिदेव-देवराज-कर्म शर्मदे ।। त्वदीयपाद पंकजं० ।।६।।

सूर्य चन्द्र इन्द्र आदि देवताओंको तथा रन्तिदेव जैसे नृपतिको कर्मका निर्देश कर सुख प्रदान करनेवाली हे देवी नर्मदे ! सनत्कुमार नाचिकेत, कश्यप, अत्रि तथा नारदादि ऋषि-मुनि-गणरूप भ्रमरों द्वारा निज मानसतलमें धारण किये गये आपके चरणारविन्दोंको मैं प्रणाम करता हूँ ।।६।।

अलक्षलक्ष-लक्षपाप-लक्ष-सार-सायुधं,
ततस्तु जीव-जन्तुतन्तु-भुक्तिमुक्तिदायकम्।
विरञ्चि-विष्णु-शङ्कर-स्वकीयधाम वर्मदे ।। त्वदीयपाद पंकजं० ।।७।।

ब्रह्मा, विष्णु और महेशको निज-निज पद या अपनी निजी शक्ति देनेवाली हे देवि नर्मदे ! अगणित दृष्ट-अदृष्ट लाखों पापोंका लक्ष भेद

करनेमें अमोघ शस्त्रके समान और तुम्हारे तटपर बसनेवाली छोटी-बड़ी सभी जीव परम्पराको भोग और मोक्ष देनेवाले तुम्हारे पादपङ्कजोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥७॥

अहोऽमृतं स्वनं श्रुतं महेशकेशजातटे,
किरात सूत-वाडवेषु पण्डिते शठे नटे ।
दुरन्त-पाप-ताप-हारि-सर्वजन्तु-शर्मदे ॥ त्वदीयपाद पंकजं० ॥८॥

हम लोगोंने शिवजीकी जटाओंसे प्रकट हुई रेवाके किनारे भील भाट ब्राह्मण विद्वान् और धूर्त नटोंके बीच घोर पाप ताप हरने वाला अहह ! अमृतमय यशोगान सुना, अतः प्राणी मात्रको सुख देने वाली हे देवि नर्मदे ! तुम्हारे चरण कमलोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥

इदन्तु नर्मदाष्टकं त्रिकालमेव ये सदा
पठन्ति ते निरन्तरं न यान्ति दुर्गतिं कदा ।
सुलभ्य देहदुर्लभं महेशधाम गौरवं
पुनर्भवा नरा न वै विलोकयन्ति रौरवम् ॥९॥

निस्सन्देह जो मनुष्य इस नर्मदाष्टकका तीनों समय सदैव पाठ करते हैं, वे कभी भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं होते अर्थात् पुनर्जन्मसे रहित हुए रौरव नरक नहीं देखते । किन्तु अन्य प्राणियोंको दुर्लभ देह भी उन्हें सुलभ होकर शिवलोकका गौरव प्राप्त होता है ॥९॥

नर्मदा स्तोत्रके कुछ मन्त्र

नमोऽस्तु ते पुण्यजलाश्रये ! शुभे ! विशुद्धसत्वे सुरसिद्ध-सेविते ।
नमोऽस्तु ते तीर्थगणैर्निषेविते, नमोऽस्तु रुद्राङ्गसमुद्भवे वरे ॥ १ ॥
नमोऽस्तु ते देवि समुद्रगामिनि, नमोऽस्तु ते देवि वरप्रदे शिवे ।
नमोऽस्तु लोकद्वय-सौख्य-दायिनि ! ह्यनेकभूतौघ-समाश्रितेऽनघे ॥ २ ॥
सरिद्वरे ! पापहरे ! विचित्रिते ! गन्धर्वयक्षोरगसेविताङ्गे ।
सनातनि ! प्राणिगणानुकम्पिनि ! मोक्षप्रदे देवि विधेहि शं नः ॥ ३ ॥
स्पृष्टं करैश्चन्द्रमसोरवेश्च तदैव दद्यात्परमं पदं तु ।
यत्रोपलाः पुण्यजलाप्लुतास्ते शिवत्वमायान्ति किमत्र चित्रम् ॥ ४ ॥

नर्मदाष्टकका हिन्दी छन्दानुवाद*

बिन्दु सिन्धुमें परिणत होकर बहने लगी तरङ्गिणि माँ !
प्रबलवेग से अरिदल के भी पातक-पुञ्ज निवारिणि माँ !
कालरूप यमदूतोंका भय हरती रक्षा करती माँ !
तेरे पदपंकजमें रेवे ! सदा - वन्दना मेरी माँ ॥ १ ॥

तेरे जलमें लीन दीन वे मीन स्वर्ग पा जाते माँ !
मच्छ-कच्छ-जलचर-नभचर-चकई-चकवे सुख पाते माँ !
भार हारिणी कलिमल का सब तीर्थ शिरोमणि होती माँ !
तेरे पदपंकजमें रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ ॥ २ ॥

अति गम्भीर नीरसे धोती पापराशि भूतल की माँ !
कल-कल करती पातक हरती सङ्कट शैल सँहरती माँ !
भीषण-प्रलय-पयोनिधिमें नित मुनिको आश्रय देती माँ !
तेरे पदपंकजमें रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ ॥ ३ ॥

भय भागा मेरा तब ही जब निर्मल नीर निहारा माँ !
शौनक मार्कण्डेय देवगण सेवित सतत तिहारा माँ !
बारम्बार जन्म मरणादिक भववारिधि भयहारिणी माँ !
तेरे पदपंकजमें रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ ॥ ४ ॥

हुए अलक्षित लक्ष-लक्ष किन्नर सुरादिसे पूजित माँ !
लक्षित लक्ष धीर पक्षीगणसे तेरा तट कूजित माँ !
शिष्ट वशिष्ठ आदि कर्दम ऋषि पिप्पलाद सुख देनी माँ !
तेरे पदपंकजमें रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ ॥ ५ ॥

---

* आचार्य श्रीशङ्करस्वामीने नर्मदाके प्रवाह = पूरको कलशमें भरकर गुरुकी रक्षा की यहीं संन्यास लिया। यह स्थान ओङ्कारेश्वर और कोई दक्षिणतट साँकलघाट शंकरपुरी बतलाते हैं; तभी यह नर्मदाष्टक रचा भाषा भाषियोंके लिए उसका यह अनुवाद है।

सनकादिक मुनि नचिकेतासुत कश्यप अत्रि भ्रमर ये माँ !
नारदादि तव चरणकमलको धारण करें हृदय में माँ !
रवि-शशि-सुरपति-रन्तिदेवको धर्म कर्म सुख देती माँ !
तेरे पदपंकजमें रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ ॥ ६ ॥

दृष्ट अदृष्ट अघोंका तूँ आयुध सी लक्ष्य भेदती माँ !
अधमाधम भी जीव जन्तुको भोग-मोक्ष दे देती माँ !
वितरण कर विधि-हरि-हरका पद निजपद अर्पित करती माँ !
तेरे पदपंकजमें रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ ॥ ७ ॥

सुना अमृतमय गान अहाहा ! जटाशङ्करी तट पर माँ !
कोल-भील-शठ-नट-भाटोंमें पण्डित के हिय पट पर माँ !
दुस्तर-पाप-ताप-संहारिणि जीवमात्र सुखकारिणि माँ !
तेरे पदपंकजमें रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ ॥ ८ ॥

जो यह तीनों समय नर्मदा अष्टक तेरा गाते माँ !
पढ़ें निरन्तर प्रेम सहित वे दुर्गति कभी न पाते माँ !
'प्रणव' गीत में प्रीति करें नर नरक न कोई जाते माँ !
दुर्लभ देह सुलभ करके नित माहेश्वर पद पाते माँ ॥ ९ ॥

जयतु नर्मदे ! जयतु वर्मदे ! तीर्थ जननि हे अम्बे ! माँ !
जयतु नर्मदे ! जयतु शर्मदे ! सुखदायिनि ! शिवगंगे माँ !
जयतु नर्मदे ! जयतु हर्म्यदे ! हर-हर विपद हमारी माँ !
तेरे पदपंकजमें रेवे ! सदा वन्दना मेरी माँ !!

नमोऽस्तु ते पुण्यजले, नमो मकरगामिनी ।
नमस्ते पापमोचिन्यै, नमो देवि ! वरानने ! ॥ १ ॥
नर्मदामादिनाथञ्च प्रणम्य परया गिरा ।
वैखर्या तु वदेदुच्चैर्नर्मदे हर नर्मदे ॥ २ ॥

श्रीनर्मदा-कवचम्

श्रीगणेशाय नमः। श्री पार्वती उवाच। ॐलोकसाक्षि जगन्नाथ! संसारार्णवतारणम्। नर्मदाकवचं ब्रूहि सर्वसिद्धिकरं सदा ॥१॥ श्रीशिव उवाच। साधु ते प्रभुतायै त्वां त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। नर्मदाकवचं देवि सर्वरक्षाकरं परम् ॥२॥ नर्मदाकवचस्यास्य महेशस्तु ऋषिस्मृतः। छन्दो विराट् सुविज्ञेयो विनियोगञ्चतुर्विधे ॥३॥ ॐअस्य श्रीनर्मदाकवचस्य महेश्वर ऋषिः, विराट् छन्दः, नर्मदा देवता, ह्लाँ बीजम्, नमःशक्तिः, नर्मदायै कीलकं मोक्षार्थे जपे विनियोगः।

अथ ध्यानम्

ॐनर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि।
नमस्ते नर्मदे देवि त्राहि मां भवसागरात् ॥४॥
आदौ ब्रह्माण्डखण्डे त्रिभुवनविवरे कल्पदा सा कुमारी,
मध्याह्ने शुद्धरेवा वहति सुरनदी वेदकण्ठोपकण्ठैः।
श्रीकण्ठे कन्यरूपा ललितशिवजटाशंकरी ब्रह्म शान्तिः,
सा देवी वेदगङ्गा ऋषिकुलतरिणी नर्मदा मां पुनातु ॥
इति ध्यात्वाऽष्टोत्तरशतवारं मूलमन्त्रं जपेत्।

ॐह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः [नर्मदायै नमः] इति मन्त्रः। अथाङ्गन्यासः ॐह्लां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐह्लीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐह्लूं मध्यमाभ्यां नमः। ॐह्लैं अनामिकाभ्यां नमः ॐह्लौं कनिष्ठकाभ्यां नमः। ॐह्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। अथ हृदयादिन्यासः। ॐह्लां हृदयाय नमः। ॐह्लीं शिरसे स्वाहा। ॐह्लूं शिखायै बषट्। ॐह्लैं कवचाय हुम्। ॐह्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐह्लः अस्त्राय फट्। ॐभूर्भुवः स्वरोमिति दिग्बन्धः।

अथ गायत्री

ॐरुद्रदेहायै विद्महे मेकलकन्यकायै धीमहि तन्नो रेवा प्रचोदयात् ॥
ॐनर्मदायै नमः साहं। इति मन्त्रः। ॐह्लीं श्रीं नर्मदायै स्वाहा।

ॐपूर्वे तु नर्मदा पातु आग्नेयां गिरिकन्यका।

दक्षिणे चन्द्रतनया नैऋत्यां मेकलात्मजा ॥ ५ ॥ रेवा तु पश्चिमे पातु वायव्ये हरवल्लभा । उत्तरे मेरुतनया ईशान्ये चतुरङ्गिणी ॥ ६ ॥ ऊर्ध्वं सोमोद्भवा पातु अधो गिरिवरात्मजा । गिरिजा पातु मे शिरसि मस्तके शैलवासिनी ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वगा नासिकां पातु भृकुटी जलवाहिनी । कर्णयोः कामदा पातु कपाले चामरेश्वरी ॥ ८ ॥ नेत्रे मन्दाकिनी रक्षेत् पवित्रा चाधरोष्टके । दशनान् केशवी रक्षेत् जिह्वां मे वाग्विलासिनी ॥ ९ ॥ चिबुके पङ्कजाक्षी च घण्टिका धनवर्धनी । पुत्रदा बाहुमूले च ईश्वरी बाहु-युग्मके ॥ १० ॥ अङ्गुलीःकामदा पातु चोदरे जगदम्बिका । हृदयं च महालक्ष्मी कटितटे वराश्रमा ॥ ११ ॥ मोहिनी जंघयोः पातु जठरे च उरः स्थले । सहजा पादयोः पातु मङ्गला पादपृष्ठके ॥ १२ ॥ धाराधरी धनं रक्षेत् पशून् मे भुवनेश्वरी । बुद्धि मे मदना पातु मनस्विनी मनो मम ॥१३॥ अभर्णे अम्बिका पातु वस्ति मे जगदीश्वरी । वाचां मे कौतुकी रक्षेत् कौमारी च कुमारके ॥ १४ ॥ जले श्रीयन्त्रणे पातु मंत्रणे मनमोहनी । तंत्रणे कुरुगर्भा च मोहने मदनावली ॥ १५ ॥ स्तम्भे वै स्तम्भिनी रक्षेत् द्विसृष्टा सृष्टिगामिनी । श्रेष्ठा चौरे सदा रक्षेत् विद्वेषे वृष्टिधारिणी ॥ १६ ॥ राजद्वारे महामाया मोहिनी शत्रुसङ्गमे । क्षोभणी पातु संग्रामे उद्भटे भटमर्दनी ॥ १७ ॥ मोहनी मदने पातु क्रीडायां च विलासिनी । शयने पातु बिम्बोष्ठी निद्रायां जगवन्दिता ॥१८॥ पूजायां सततं रक्षेत् बाल-वद् ब्रह्मचारिणी । विद्यायां शारदा पातु वार्तायां च कुलेश्वरी ॥ १९ ॥ श्रियं मे श्रीधरी पातु दिशायां विदिशा तथा । सर्वदा सर्वभावेन रक्षेद्वै परमेश्वरी ॥ २० ॥ इतीदं कवचं गुह्यं कस्यचिन्न प्रकाशितम् । सम्प्रत्येव मया प्रोक्तं नर्मदाकवचं यदि ॥ २१ ॥ ये पठन्ति महाप्राज्ञास्त्रिकालं नर्मदा-तटे । ते लभन्ते परं स्थानं यत् सुरैरपि दुर्लभम् ॥ २२ ॥ गुह्याद् गुह्यतरं देवि रेवायाः कवचं शुभम् । धनदं मोक्षदं ज्ञानं सद्बुद्धिमचलां श्रियम् ॥ २३ ॥ महापुण्यात्मका लोके भवन्ति कवचात्मके । एकादश्या निराहारो व्रतस्थो नर्मदातटे ॥ २४ ॥ सायाह्ने योगसिद्धिः स्यात् मनः सृष्टार्धरात्रके । सप्तावृत्ति पठेद्विद्वान् ज्ञानोदयं समालभेत् ॥ २५ ॥ भौमार्के रविवारे तु अर्धरात्रे चतुष्पथे । सप्तावृत्ति पठेद् देवि, स लभेद्

बलकामकम् ॥२६॥ प्रभाते ज्ञानसम्पत्ति मध्याह्ने शत्रुसंकटे। शतावृत्ति-विशेषेण मासमेकं च लभ्यते ॥२७॥ शत्रुभीते राजभंगे अश्वत्थे नर्मदातटे। सहस्त्रावृत्तिपाठेन संस्थितिर्वै भविष्यति ॥२८॥ नान्या देवि ! नान्या देवि नान्या देवि महीतले। न नर्मदा समा पुण्या वसुधायां वरानने ॥२९॥ यं यं वांछयति कामं यः पठेत् कवचं शुभम्। तं तं प्राप्नोति वै सर्वं नर्मदायाः प्रसादतः ॥३०॥

इति श्रीभवानीतन्त्रे हरगौरी-संवादे
श्रीनर्मदा कवचं-समाप्तम्

नर्मदाष्टक (मणिप्रवाल)

देवासुरा सुपावनी नमामि सिद्धिदायिनी, त्रिपूरदैत्यभेदिनी विशाल तीर्थमेदिनी। शिवासनी शिवाकला किलोललोल चापला, तरंग रङ्ग सर्वदा नमामि देवि नर्मदा ॥१॥ विशाल पद्मलोचनी समस्त दोष मोचिनी, गजेन्द्र-चाल-गामिनी विदीप्त तेजदामिनी। कृपाकरी सुखाकरी अपार पारसुन्दरी, तरंगरंग सं० ॥२॥ तपोनिधी तपस्विनी स्वयोग युक्तमाचरी, तपः कला तपोबला तपस्विनी शुभामला। सुरासनी सुखासनी कुताप पापमोचिनी, तरंगरंग सं० ॥३॥ कलौ मलापहारिणी नमामि ब्रह्मचारिणी, सुरेन्द्र शेषजीवनी अनादि सिद्धिधारिणी। सुहासिनी असंगिनी जरायु-मृत्यु-भंजिनी, तरङ्गरङ्ग सं० ॥४॥ मुनीन्द्र-वृन्द-सेवितं स्वरूपवह्नि सन्निभं, न तेज दाहकारकं समस्त ताप-हारकम्। अनन्त-पुण्य-पावनी, सदैव शम्भु भावनी, तरंगरंग सं० ॥५॥ षडङ्गयोग खेचरी विभूति चंद्रशेखरी, निजात्म-बोध-रूपिणी, फणीन्द्र-हारभूषिणी जटा-किरीट-मण्डनी, समस्त पाप-खण्डनी, तरंगरंग सं० ॥६॥ भवाब्धि कर्णधारके ! भजामि मातु तारके, सुखड्गभेद छेदके दिगन्तरालभेदके। कनिष्ठबुद्धिछेदिनी विशाल-बुद्धिवर्धिनी, तरंगरंग सं० ॥७॥ समष्टि अण्ड खण्डनी पताल सप्त भेदिनी, चतुर्दिशा सुवासिनी, पवित्र पुण्यदायिनी। धरा-मरा-स्वधारिणी समस्त लोक तारिणी, तरंगरंग सर्वदा नमामि देवि नर्मदा ॥८॥

स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती कृता

नर्मदा-नीराजनम् (आरती)

ॐ जय जय नर्मद ईश्वरि मेकल संजाते।
नीराजयामि नाशित तापत्रयजाते ॥ध्रु०॥

वारितसंसृतिभीते सुरवर मुनिगीते। सुखदे पावनकीर्ते, शंकरतनुजाते।
देवापगाधितीर्थे दत्ताग्रपुमर्थे। वाचामगम्यकीर्ते जलमयसन्मूर्ते॥
॥ ॐ जय जय० ॥१॥

नन्दनवन-समतीरे स्वादुसुधानीरे। दर्शितभवपरतीरे, दमितांतकसारे।
सकलक्षेमाधारे, वृतपारावारे। रक्षास्मानतिघोरे, मग्नान् संसारे॥
॥ ॐ जय जय० ॥२॥

स्वयशःपावितजीवे मामुद्धर रेवे। तीरं ते खलु सेवे त्वयि निश्चितभावे।
कृतदुष्कृत-दवदावे त्वत्पदराजीवे। तारक इह मेऽतिजवे भक्त्या ते सेवे॥
॥ ॐ जय जय० ॥३॥

प्रचलित भजन-आदि संग्रह

मैय्या अमर कण्ठवाली, कि तुम भोली भाली।
तेरे गुण गाते हैं साधू बजा-बजा ताली॥ मैय्या०
भूरे मगरपर कीन्हीं सवारी हाथ कमल का फूल।
सबको देती रिद्धी-सिद्धी हमें गयी क्यों भूल॥ १॥ मैय्या०
नहीं हमारा कुटुम्ब कबीला नहीं मात अरु तात।
हम तो आये शरण तुम्हारी शरण पड़ेकी लाज॥ २॥ मैय्या०
निर्धनियोंको धन देती है अज्ञानीको ज्ञान।
अभिमानीका मान घटाती खोती नाम निशान॥ ३॥ मैय्या०
लाखों पापी तुमने तारे लगी न पलकी देर।
अब तो मैया मेरी बारी कहाँ लगाई देर॥ ४॥ मैय्या०
झारखण्ड संस्थान तुम्हारा दो धाराके पास।
जँह शिवशङ्कर करें तपस्या उच्च शिखर कैलास॥ ५॥ मैय्या०

नर्मदाजीका भजन

हैं तेरे आधार नर्मदे हैं तेरे आधार ॥

मूर्ति मनोहर मङ्गलकारी, नीलाम्बर है मगर सवारी ।
रूप अनूपम भवभय हारी, महिमा अमित अपार ॥१॥ नर्मदे हैं०
शम्भु लोकसे धारा आई, मेकल पर्वत तीर्थ बनाई ।
अमरकण्ठ जग कीरति छाई, होवे जय जयकार ॥२॥ नर्मदे हैं०
रेवा कुण्डकी शोभा न्यारी, जहँ स्नान करें नरनारी ।
छटा अनूठी निर्मल वारी, चहुँदिशि फाटक द्वार ॥३॥ नर्मदे हैं०
पूरब बगिया बनी सुहावन, मारकण्डे आश्रम अति पावन ।
सोनभद्रधारा मनभावन, गिरती फोर पहार ॥४॥ नर्मदे हैं०
कपिलधारकी है छवि न्यारी, दूधधार निर्जन भयकारी ।
बड़े-बड़े गिरि दुर्गमभारी, तिनको दिये विदार ॥५॥ नर्मदे हैं०
धार नर्मदा पश्चिम धाई, उत्तर सोनभद्र प्रभुताई ।
दोनों शिवगङ्गा पद पाई, दिया पातकिन तार ॥६॥ नर्मदे हैं०
यम से दूतन जाय पुकारे, पापी खोज-खोज हम हारे ।
थे वे सब रेवाके द्वारे, बन्द किया यम द्वार ॥७॥ नर्मदे हैं०
सुमरिनसे मैया दुख हरती, दर्शनसे पातक संहरती ।
मज्जनसे मिलती है मुक्ती पाप होंय सब छार ॥८॥ नर्मदे हैं०
शङ्कर तुम्हें महावर दीन्हें तुम कङ्कर शङ्कर सम कीन्हे ।
भक्तनको निज सेवक चीन्हे किया जगत उद्धार ॥९॥ नर्मदे हैं०
मातु नर्मदे तुम्हें मनाऊँ, तुम्हरी कृपा विमलमति पाऊँ ।
शिवसरिते तेरे गुण गाऊँ, करदे बेड़ा पार ॥१०॥ नर्मदे हैं०

रेवां पद्मपलाशदीर्घनयनां श्यामां सुशोणाधरां
नासा मौक्तिक चारुहास-सुमुखीं - रक्तांच रक्ताम्बराम् ।
तन्त्रीमङ्कगतां करेण शनकैरुन्नादयन्तीं मुहु-
र्वन्दे मेकलकन्यकां शिवपरां सर्वांगभूषावृताम् ॥ १ ॥

आरती-श्रीनर्मदाजी की

ॐजय जगदानन्दी, मैय्या जय आनन्द कन्दी ॥
ब्रह्मा हरि हरशङ्कर, रेवा शिव हरि शङ्कर रुद्री पालन्ती ॥ ॐजय० १॥
देवी नारद शारद तुम वरदायक, अभिनव पदचण्डी,
सुरनर मुनि जन सेवत, सुरनर मुनि० शारद पदवन्ती ॥ ॐजय० २॥
देवी धूम्रकवाहन राजत, वीणा वादयती।
झूमकत-झूमकत-झूमकत, झननन-झननन० रमती राजन्ती ॥ ॐजय० ३॥
देवी बाजत ताल मृदङ्गा, सुरमण्डल रमती।
तोड़ीतान्,तोड़ीतान् तोड़ीतान्,तुरड़ड़तुरड़ड़०रमती सुरवन्ती ॥ ॐजय० ४॥
देवी सकल भुवनपर आप विराजत, निशदिन आनन्दी।
गावत गङ्गाशङ्कर, सेवत रेवा शङ्कर तुम भव मेटन्ती ॥ ॐजय० ५॥
मैय्याजी को कञ्चन थाल विराजत अगर कपूर वाती।
अमरकण्ठमें विराजत, घाटनघाट० कोटिरतन जोती ॥ ॐजय० ६॥
मैय्याजी की आरती निशिदिन पढ़ गावें, हो रेवा जुग २ जन गावें।
भजत शिवानन्द स्वामी जपत हरी० मन वाञ्छित पावें ॥ ॐजय० ७॥

॥ नामावली और विनय ॥

हर शिव शङ्कर गीरीशं, वन्दे गङ्गाधरमीशम्। रुद्रं पशुपतिमीशानं, कलये काशीपुरिनाथम्। भज भाललोचन, परमानन्द, नीलकण्ठ त्वं शरणं। शिव असुरनिकन्दन भवदुखभञ्जन सेवकके प्रतिपाला। वं आवागमन मिटाओ शङ्कर भज शिव बारम्बारा ॥ माइ रेवा के हम बालक हैं, मैय्या दूध पिलावत है ॥ रेवा तटपर धूमधड़ाका, रामभजन का यही तड़ाका। भज ले रे मन ! चारों हि धाम। गौरी शंकर सीताराम ॥ गले में तुलसी मुख में राम, हृदय विराजें शालिग्राम ॥ बोलो सन्तो हरी-हरी। मुखपर मुरली अजब धरी ॥ नमो नर्मदा माई रेवा। पार्वती वल्लभ सदा शिव ॥ भजो रेवा हि रेवा भजो मैय्या हो मैय्या भजो भोला ही भोला, हर-हर महादेव ॥

विविध आरतियाँ

(शिवकी आरती)

ॐजयशिव ओङ्कारा, स्वामी हरभज ओङ्कारा। ब्रह्मा विष्णुसदाशिव, भोले २ नाथ महादेव अर्धाङ्गी धारा ॥ ॐ हर हर हर महादेव ॥ एकानन चतुरानन पञ्चानन राजे, शिव पञ्चानन राजे। हंसासन गरुडासन २ वृषबाहन साजे ॥ ॐ हर हर० ॥१॥ दो भुज चार चतुर्भुज दशभुज अति सोहै, शिव दश० तीनों रूप निरखते २ त्रिभुवन मन मोहे ॥ ॐ हर० ॥२॥ अक्षमाला वनमाला मुँडमाला धारी, शिव० त्रिपुरारीश मुरारी २ करमाला धारी ॥ ॐ हर० ॥३॥ श्वेताम्बर पीताम्बर बाघम्बर अङ्गे। शिव बा०। सनकादिक गरुडादिक २ भूतादिक सङ्गे ॥ ॐ हर ॥४॥ अमियज लक्ष्मी सरस्वती पार्वती सङ्गा, शिव० पा० गायत्री सावित्री २ शिवगौरी गङ्गा ॥ ॐ हर० ॥५॥ करमध्ये सुकमण्डलु चक्र त्रिशूल धारी। शिव च०। दुखहारी सुखकारी २ शम्भु जगपालनकारी ॥ ॐहर० ॥६॥ शिवजी के जटों में गङ्ग विराजत, गलमुण्डन माला। शिव गऊ० शेषनाग लिपटावत २ ओढ़त मृगछाला ॥ ॐहर० ॥७॥ सच्चिदानन्द स्वरूपा, स्वामी त्रिभुवन के राजा, शिव० जगमग जोति विराजत, जगमग २ अनहृद के बाजा ॥ ॐहर० ॥८॥ शिवजीके चौसठ योगिनी मङ्गल गावत, नृत्य करत भैरव, शिव बाजत डमरु ॥ ॐहर० ॥९॥ पर्वतमें पार्वती विराजत शङ्कर कैलासा। शिव० आक धतूरेके भोजन २ भस्मीमें रमता ॥ ॐहर० ॥१०॥ ब्रह्मा विष्णु सदा शिव तीनों हि इक रूपा। शिव तीनों २ स्वामी अन्तर नहिं रखना, हरि हरके गुण गावत २ भवसागर तरना ॥ ॐहर० ॥११॥ काशीमें विश्वनाथ विराजत, नन्दी-ब्रह्मचारी, शिव० नित उठ दर्शन पावत २ महिमा अतिभारी ॥ॐहर० ॥१२॥ शिवजी की आरती जो जन, निशदिन पढ़ ध्यावे, शिव० भजत शिवानन्द स्वामी जपत० इच्छित फल पावे, कैलाशहि जावे ॥ॐहर हर हर महादेव॥१३॥ जय शिव ओंकारा स्वामी हरभज ओङ्कारा०॥

आरती श्री सत्यनारायणकी

ॐजय लक्ष्मीरमणा, श्री लक्ष्मीरमणा। सत्यनारायण स्वामी जन पातक हरणा। जय० ॥ रत्न जड़ित सिंहासन अद्भुत छवि राजे। नारद करत निराजन घण्टा ध्वनि बाजै ॥ जय० ॥१॥ प्रगट भए कलि कारण द्विजको दरश दियो। बूढ़ा ब्राह्मण बनकर कञ्चन महल कियो ॥ जय० ॥२॥ दुर्बल भील कठोरा जिस पर कृपा करी। चन्द्रचूड़ इक राजा ताकी विपति हरी ॥ जय० ॥३॥ वैश्य मनोरथ पायो श्रद्धा तज दीनी। सो फल भोग्यो प्रभुजी फिर संस्तुति कीनी ॥ जय० ॥४॥ भाव भक्ति के कारण छिन-छिन रूप धर्यो। श्रद्धा धारण कीन्हीं तिनको काज सर्यो ॥ जय० ॥५॥ ग्वाल बाल सँग राजा वन में भक्ति करी। मन वांछित फल दीनो दीन दयाल हरी ॥ जय० ॥६॥ चढ़त प्रसाद सवायो कदली फल मेवा। धूप दीप तुलसी से राजी सत् देवा ॥ जय० ॥७॥ श्री सत्यनारायणजीकी आरती जो गावै। भणत शिवानन्द स्वामी सुख सम्पति पावै॥ ॐ जय लक्ष्मीरमणा श्री लक्ष्मीरमणा० ॥ ८ ॥

आरती भगवान् जगदीश्वर की

ॐ जय जगदीश हरे, प्रभु जय जगदीश हरे ॥ भक्त जनों के संकट २ छिनमें दूर करे ॥ ॐ० ॥१॥ जो ध्यावै फल पावै, दुःख विनसै मनका ॥ सुख सम्पत्ति घर आवे २ कष्ट मिटै तनका ॥ ॐ० ॥२॥ माता पिता तुम मेरे शरण गहूँ किसकी ॥ तुम बिन और न दूजा २ आस करूँ जिसकी ॥ ॐ० ॥३॥ तुम पूरण परमात्मा तुम अन्तर्यामी ॥ पारब्रह्म परमेश्वर २ तुम सबके स्वामी ॥ ॐ० ॥४॥ तुम करुणाके सागर, तुम पालन कर्ता ॥ मैं, मूरख खल कामी २ कृपा करो भर्ता ॥ ॐ० ॥५॥ तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपती ॥ किस विध मिलूँ दयामय ! मैं तुमसे कुमती ॥ ॐ० ॥६॥ दीनबन्धु दुःखहर्ता, तुम ठाकुर मेरे ॥ अपने हाथ उठाओ २ द्वार पड़ा तेरे ॥ ॐ० ॥७॥ विषय विकार मिटाओ, पाप, हरो देवा ॥ श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ २ सन्तन की सेवा ॥ ॐजय जगदीश हरे० ॥८॥

आरती सर्वरूप भगवान् की

ॐ जय जगदीश हरे प्रभु ! जय जगदीश हरे ! मायातीत महेश्वर मन वच बुद्धि परे ॥टेक॥ आदि अनादि अगोचर अविचल अविनाशी। अतुल अनन्त अनामय अमित शक्तिराशी ॥ॐ॥१॥ अमल अकल अज अक्षय अव्यय अविकारी। सत्चित् सुखमय सुन्दर शिव सत्ताधारी ॥ॐ॥२॥ विधि हरि शंकर गणपति सूर्य शक्तिरूपा। विश्व चराचर तुमही तुम्हीं विश्वभूपा ॥ ॐ॥३॥ माता-पिता पितामह स्वामि सुहृदभर्ता। विश्वोत्पादक पालक रक्षक संहर्ता ॥ ॐ ॥४॥ साक्षी शरण सखा प्रिय प्रियतम पूर्ण प्रभो। केवल-काल कलानिधि कालातीत विभो ॥ ॐ ॥५॥ राम-कृष्ण करुणामय, प्रेमामृतसागर। मनमोहन मुरलीधर नित नव नटनागर ॥ ॐ ॥६॥ सब विधि हीन मलिनमति हम अति पातकि जन। प्रभुपद विमुख अभागी कलि कलुषित तन मन ॥ ॐ ॥ ७ ॥ आश्रयदान दयार्णव ! हम सबको दीजे। पाप ताप हर हरि ! सब, निज जन कर लीजै ॥ॐ जय जगदीश हरे, प्रभुजय० ॥८॥

श्री अञ्जनीकुमारकी आरती तथा हनुमद्-वन्दना

आरती श्री अञ्जनीकुमार की। शिवस्वरूप, मारुतनन्दन, केसरी-सुअन कलियुग कुठार की ॥ टेक ॥ हियमें राम सीय नित राखत, मुखसों रामनाम गुण भाखत, सुमधुर भक्ति प्रेमरस चाखत मङ्गल कर मङ्गलाकार की ॥ आरति० ॥१॥ विस्मृत बलपौरुष अतुलित बल, दहन दनुजवन हित दावानल, ज्ञानि मुकुटमणि पूर्ण गुण सकल, मञ्जुभूमि शुभ सदाचार की ॥ आरति० ॥२॥ मन इन्द्रिय विजयी विशाल मति, कलानिधान निपुण गायक अति, छन्द व्याकरण शास्त्र-अमित गति, रामभक्त अतिशय उदार की ॥ आरति० ॥ ३ ॥ पावन परम सुभक्ति प्रदायक, शरणागतको सब सुखदायक, विजयी वानर-सेना नायक, सुगति पोतके कर्णधार की ॥ आरति श्री अञ्जनीकुमारकी० ॥ ४ ॥ अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं, दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्। सकल-गुणनिधानं वानराणामधीशं, रघुपति-प्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥

उल्लंघ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं, यः शोकबह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां, नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥१॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं, श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥२॥
अञ्जनीगर्भसम्भूत ! कपीन्द्र ! सचिवोत्तम ! ।
रामप्रिय ! नमस्तुभ्यं हनुमन् ! रक्ष सर्वदा ॥३॥

श्रीगणेशजीकी आरती तथा वन्दना

आरति गजवदन विनायक की। सुर-मुनि-पूजित गणनायककी ॥ टेक ॥ एकदन्त शशिभाल गजानन, विघ्न-विनाशक शुभगुणकानन, शिवसुत वन्द्यमान चतुरानन। दुःखविनाशक सुखदायककी ॥ सुरमुनि० ॥१॥ ऋद्धि-सिद्ध स्वामी समर्थ अति, विमल बुद्धि दाता सुविमल मति। अघ-वन-दहन-अमल-अविगत-गति, विद्या-विजय विभवदायककी ॥सुर मुनि० ॥२॥ पिङ्गल नयन विशाल शुण्डधर, धूम्रवर्ण शुचि वज्रांकुशकर, लम्बोदर बाधा विपत्ति हर, सुरवन्दित सबविधि लायककी ॥ सुर मुनि० ॥ आरती गज० ॥३॥

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय, लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय सुरयज्ञविभूषिताय, गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥१॥
यतोऽनन्तशक्तेरनन्ताश्च जीवा, यतो निर्गुणादप्रमेया गुणास्ते ।
यतो भाति सर्वं त्रिधा भेदभिन्नं, सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥२॥
स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम् ।
वासरमणिरिव तमसां राशीन्नाशयति विघ्नानाम् ॥३॥

देवी भगवती श्रीगौरी और लक्ष्मी वन्दना

नमो देव्यै महादेव्यै, शिवायै, सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै, नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥१॥
या देवी सर्वभूतेषु, शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ॥२॥

कुन्द-सुन्दर-मन्दहास-विराजिताधर-पल्लवां,
इन्दुबिम्ब-निभाननामरबिन्द-चारुविलोचनाम् ।
चन्दनागरु-पङ्करूषित्त - तुङ्गपीन - पयोधरां,
चन्द्रशेखर-बल्लभां प्रणमामि शैलसुतामिमाम् ॥ १ ॥

सरसिजनिलये ! सरोजहस्ते ! धवलतरांशुक गन्धमाल्यशोभे ।
भगवति ! हरिबल्लभे ! मनोज्ञे ! त्रिभुवनभूतिकरि ! प्रसीद मह्यम् ॥ २ ॥

शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे ।
सर्वदा सर्वदास्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात् ॥ ३ ॥

आरती श्रीअम्बाजीकी

जय अम्बे गौरी मैय्या जय श्यामा गौरी । तुमको निशिदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिव री ॥ जय अम्बे ॥१॥ माँग सिंदूर विराजत टीको मृग-मदको । उज्वलसे दोउ नैना चन्द्रवदन नीको ॥ जय० ॥२॥ कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजै । रक्तपुष्प गलमाला, कण्ठन पर साजै ॥जय० ॥३॥ केहरि बाहन राजत, खड्ग-खपरधारी । सुरनर-मुनि-जन सेवन, तिनके दुखहारी ॥ जय० ॥४॥ कानन कुण्डल शोभित नासाग्रे मोती । कोटिन चन्द्र दिवाकर समराजत ज्योती ॥जय० ॥५॥ शुम्भ-निशुम्भ-बिदारे महिषासुर-घाती । धूम्र विलोचन-नैना निशिदिन मदमाती ॥जय०॥६॥ चण्ड-मुण्ड संहारे, शोणित बीज हरे । मधुकैटभ दोउ मारे, सुर-भयहीन करे ॥जय० ॥७॥ ब्रह्माणी रुद्राणी, तुम कमला रानी । आगम निगम बखानी, तुम शिव पटरानी ॥ जय० ॥८॥ चौसठ योगिनी गावत, नृत्य करत भैरूँ । बाजत ताल मृदङ्गा, औ बाजत डमरू ॥ जय अम्बे० ॥९॥ तुमही जगकी माता, तुमही हो भरता । भक्तनकी दुख हरता, सुख सम्पति करता ॥जय० ॥१०॥ भुजा चार अति शोभित, वर मुद्राधारी । मनवांछित फल पावत सेवत नरनारी ॥ जय० ॥ ११ ॥ कंचन थाल विराजत अगर-कपूर बाती । मालकेतुमें राजत कोटि रतन ज्योती ॥ जय० ॥ १२ ॥ अम्बेजीकी आरती जो जन नित गावै । कहत शिवानन्द स्वामी, सुख सम्पति पावै ॥ जय अम्बे गौरी मैय्या जय श्यामा गौरी० ॥ १३ ॥

श्रीसरस्वति-स्तोत्रम् तथा वन्दना

रवि-रुद्र-पितामह-विष्णुनुतं हरिचन्दन-कुंकुम-पंकयुतं।
मुनिवृन्द-गणेद्र-समानयुतं, तव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥ १ ॥
शशि-शुद्धसुधा-हिम-धामयुतं, शरदंबर-बिंब-समानकरं ।
बहुरत्न-मनोहर-कान्तियुतं, तब नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥ २ ॥
कनकाब्ज-विभूषित-भूतिभवं, भवभाव-विभाषित-भिन्नपदं ।
प्रभुचित्त-समाहित-साधुपदं, तव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥ ३ ॥
भवसागर-मज्जन-भीतिनुतं, प्रतिपादित-संतति-कारमिदं ।
विमलादिक-शुद्धविशुद्धपदं, तब नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥ ४ ॥
मतिहीन-जनाश्रय-पादमिदं, सकलागम-भाषितभिन्न पदम् ।
परिपूरित-विश्वमनेकभवं, तव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥ ५ ॥
परिपूर्ण-मनोरथधाम-निधिं, परमार्थ-विचार-विवेकनिधिम् ।
सुरयोषित-सेवित-पादतलं, तव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥ ६ ॥
सुरमौलि-मणिद्युति-शुभ्रकरं, विषयादि-महाभय-वर्णहरं ।
निजकान्ति-विलेपित-चन्द्र शिवं, नव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥ ७ ॥
गुणनैककुल-स्थिति-भीतिपदं, गुणगौरव-गर्वित-सत्यपदं ।
कमलोदर-कोमल-पादतलं, तव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥ ८ ॥

त्रिसन्ध्यं यो जपेन्नित्यं, जले वापि स्थले स्थितः ।
पाठमात्रात्भवेत्प्राज्ञो ब्रह्मनिष्ठः पुनः पुनः ॥ ९ ॥

शुक्लां ब्रह्मविचार-सारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं,
वीणापुस्तक-धारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम् ।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥ १ ॥

या कुन्देन्दु-तुषारहार-धवला या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावर-दण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्माच्युत-शंकर-प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता,
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥ २ ॥

अथ देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥१॥

विधेरज्ञानेन द्रविण विरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥२॥

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥३॥

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापिं त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥४॥

परित्यक्ता देवा विविधविध-सेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥५॥

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिर कोटिकनकैः।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जनीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥६॥

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः ।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानी त्वत्पाणिग्रहण-परिपाटीफलमिदम् ॥७॥

न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि-सुखेच्छापि न पुनः ।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥८॥

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः ।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥९॥

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं, करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः, क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥१०॥

जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि
अपराधपरम्परापरं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥११॥

मत्समः पातकी नास्ति, पापघ्नो त्वत्समा न हि
एवं ज्ञात्वा महादेवि, यथायोग्यं तथा कुरु ॥१२॥

इति श्रीशंकराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्त्रोत्रं सम्पूर्णम् ।

श्रीवासुदेववन्दन तथा महात्माओंका पूजन[1]

नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये, सहस्रपादाक्षि-शिरोरुवाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥१॥

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ।
नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोऽस्तुते ॥२॥

---

१. वासुदेवस्य द्वेरूपे, चलं चाचलमेव च ।
चलं संन्यासिनो रूपं ह्यचलं प्रतिमादिकम् ॥

वासनाद् वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम् ।
सर्वभूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥३॥
शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं वादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥४॥
ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने ।
व्योमवद् व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥५॥

श्रीगुरु-दत्त-वन्दनम्

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि ॥ १ ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥२॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥
काषायवस्त्रं करदण्डधारिणं, कमण्डलुं पद्मकरेण शंखम् ।
चक्रं गदाभूषित-भूषणाढ्यं, श्रीपादराजं शरणं प्रपद्ये ॥१॥
ध्यानं सत्यं पूजा सत्यं, सत्यं देवो निरञ्जनम् ।
गुरोर्वाक्यं सदा सत्यं, सत्यं देव उमापतिः ॥२॥

ब्रह्मविद्याके आचार्योंकी वन्दना

ॐनारायणं पद्मभवं वशिष्ठं, शक्तिं च तत्पुत्रपराशरञ्च ।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं, गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ॥१॥
श्रीशङ्कराचार्यमथास्य पद्मपादञ्च हस्तामलकञ्च शिष्यम् ।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरून् सन्ततमानतोऽस्मि ॥२॥
श्रुति-स्मृति-पुराणानामालयं करुणालयम् ।
नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥ शङ्करं० ॥३॥

श्रीहरि-वन्दना

यं ब्रह्मा-वरुणेन्द्र-रुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपद-क्रमोपनिषदै-र्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो,
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥१॥
यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्तेति मीमांसकाः,
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥२॥
शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं,
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानिगम्यं,
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥३॥
सशंखचक्रं सकिरीटकुण्डलं, सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम्।
सहार-वक्षःस्थल-कौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥४॥
हे रामाः! पुरुषोत्तमा! नरहरे! नारायणाः! केशवा!
गोविंदा! गरुडध्वजा! गुणनिधे! दामोदरा! माधवाः।
हे कृष्णाः कमलापते! यदुपते! सीतापते! श्रीपते!
बैकुण्ठाधिपते! चराचरपते! लक्ष्मीपते! पाहि माम् ॥५॥

श्रीराम-वन्दना

श्रीरामचन्द्र कृपालु भज मन हरण-भवभय-दारुणं।
नवकञ्ज-लोचन-कञ्जमुख-करकञ्ज-पद-कञ्जारुणम् ॥१॥
कन्दर्प-अगणित-अमित-छबि-नवनील-नीरज-सुन्दरं।
पटपीत मानहु तड़ित रुचि-शुचि नौमि जनक सुतावरम् ॥२॥
भजु दीनबन्धु - दिनेश - दानवदलन - दैत्य - निकन्दनं।
रघुनन्द - आनंदकन्द - कौशलचन्द्र - दशरथ-नन्दनम् ॥३॥

शिरमुकुट-कुण्डल-तिलकचारु-उदार-अङ्गविभूषणं ।
आजानुभुज-शरचापधर-संग्रामजित-खरदूषणम् ॥ ४ ॥
इति वदति तुलसीदास शङ्कर-शेषमुनिमन-रञ्जनं ।
मम हृदयकञ्ज निवास कुरु कामादि-खलदल-गञ्जनम् ॥ ५ ॥

आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनं
वैदेहीहरणं जटायुमरणं, सुग्रीवसम्भाषणम् ।
वालीनिर्दलनं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं,
पश्चाद् रावणकुम्भकर्णहननमेतद्धि रामायणम् ॥ १ ॥

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ २ ॥
आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥ ३ ॥
नीलोत्पलनिभो रामो लक्ष्मणः कैरवोपमः ।
मानसे राजतामेतौ बोधवैराग्यविग्रहौ ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण-वन्दना

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ १ ॥
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय, गोविन्दाय नमो नमः ॥ २ ॥

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्, पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुंदरमुखादरविंदनेत्रात्, कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥ ३ ॥

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभं,
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः, करे कङ्कणम् ।
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली,
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः ॥ ४ ॥

आदौ देवकिदेवगर्भजननं गोपीगृहे वर्धनं,
मायापूतन-जीवतापहरणं गोवर्धनोद्धारणम् ।

कंसच्छेदन-कौरवादिहननं कुन्तीसुतापालनं,
श्रीमद्भागवतं-पुराणकथितं श्रीकृष्णलीलामृतम् ॥ ५ ॥
अग्रे कृत्वा किमपि चरणं जानुनैकेन तिष्ठन्,
पश्चात्पार्थं प्रियरसजुषा चक्षुषा वीक्षमाणः ।
वामे तोत्रं करसरसिजे दक्षिणे ज्ञानमुद्रा—
माबिभ्राणो रथमधिवसन् पातु नः सूतवेषः ॥ ६ ॥
नन्दनन्दन-पदारविन्दयोः स्यन्दमान-मकरन्द-बिन्दवः ।
सिन्धवः परमसौख्यसम्पदां नन्दयन्तु हृदयं ममामिनशम् ॥ ७ ॥

छन्द—भये प्रगट कृपाला दीन दयाला यसुमतिके हितकारी ।
हर्षित महतारी रूप निहारी मोहन मदन मुरारी ॥
कंसासुर जाना मन अनुमाना पूतना बेग पठाई ।
सो हर्षित धाई मन मुसुक्याई गई जहाँ यदुराई ॥
तेहि जाय उठायो हृदय लगायो पयधर मुखमें दीन्हा ।
तब कृष्ण कन्हाई मन मुसुकाई प्राण तासु हर लीन्हा ॥
जब इन्द्र रिसायो मेघन लायो बसकर ताहि मुरारी ।
गौअन हितकारी सुरमुनि झारी नखपर गिरिवर धारी ॥
कंसासुर मारो अति हंकारो वत्सासुर संहारी ।
बक्कासुर आयो बहुत डरायो ताको वदन विदारी ॥
अति दीनहि जानी प्रभु चक्रपानी दियो तिन्हहि निज लोका ।
ब्रह्मा सुरराई अति सुख पाई मगन भये गये शोका ॥
यह छन्द अनूपा है रसरूपा जो नर याको गावें ।
तेहि सम नहिं कोई त्रिभुवन सोई मन वांछित फल पावें ॥

दोहा—नन्द यशोदा तप कियो, मोहनसे मन लाय ।
देखन चाहत बाल सुख, रहो कछुक दिन जाय ॥
जो नक्षत्र मोहन भयो, सो नक्षत्र परो आय ।
चारु बधाई रीति सब, करत यशोदा माय ॥

राधावर कृष्णचन्द्र जी की जय ।

भगवान् श्रीकृष्णकी आरती

आरति श्रीकृष्ण कन्हैया की, सुमधुर रसके बरसैया की ।
मथुरा कारागृह अवतारी, गोकुल जसुदा गोद विहारी ॥
नन्दलाल नटवर गिरधारी, वासुदेव हलधर भैय्या की ॥
आरति श्रीकृष्ण क० ॥ १ ॥

मोर मुकुट पीताम्बर छाजे, कटि काछनि, कर मुरलि विराजे ।
पूर्ण शरद शशि मुख लखि लाजे, काम कोटि छवि जितवैयाकी ॥
आरति श्रीकृष्ण क० ॥ २ ॥

गोपीजन रस रास विलासी, कौरव कालिय कंस विनाशी ।
हिमकर भानु कृशानु प्रकासी, सर्वभूत हिय बसवैया की ॥
आरति श्रीकृष्ण की० ॥ ३ ॥

कहुँ रण चढ़ै भाग कहुँ जावै, कहुँ नृप कर कहुँ गाय चरावै ।
कहुँ योगेश वेद जस गावै, जग नचाय व्रज नचवैया की ॥
आरति श्रीकृष्ण की० ॥ ४ ॥

अगुण सगुण लीला वपुधारी, अनुपम गीता ज्ञान प्रचारी ।
'दामोदर' सब विधि बलिहारी, विप्र धेनु सुर-रखवैया की ॥
आरति श्रीकृष्ण क० ॥ ५ ॥

आरती युगल किशोरकी

आरति जुगल किशोर की कीजै, तन-मन-धन न्योछावर कीजै ।
गौरश्याम मुख निरखन कीजै, प्रेम स्वरूप नयन भर पीजै ॥
रवि-शशि-कोटि-वदनकी शोभा, ताहि देख मेरो मन लोभा ।
मोरमुकुट कर मुरली सोहै, नटवर वेष निरख मन मोहै ॥
ओढ़े पीत-नील पटसारी, कुञ्जन ललना लाल बिहारी ॥
श्रीपुरुषोत्तम गिरवर धारी, आरति करत सकल नर नारी ।
नँदनन्दन वृषभानु किसोरी, परमानन्द प्रभु अविचल जोरी ॥ आरति०

शिव-पूजनविधि

पवित्र होकर आचमन प्राणायामके अनन्तर संकल्प छोड़कर प्रथम गणेशपूजन, फिर पार्वती नंदीश्वर-वीरभद्र-स्वामिकार्तिक-कुबेरादिक का पूजन क्रमशः करे। मूर्तियोंके अभावमें केवल आवाहन करके पूजन करना चाहिए।

भगवान् शिव या विष्णु आदि देवताओंका पूजन वैदिक मन्त्र, पुरुष सूक्त आदिसे करनेकी विधि है। यह सर्वदेवोपयोगी और सभीके करने योग्य आगम मन्त्रोंसे पूजन प्रकार लिखा जा रहा है।

गणेश पूजन

आवाहन मंत्र—आगच्छ भगवन् देव, स्थाने चात्र स्थिरो भव।
यावत्पूजां करिष्यामि, तावत्त्वं सन्निधौ भव ॥ १ ॥
पूजन करके प्रार्थना करे—लम्बोदर नमस्तुभ्यं, सततं मोदकप्रिय।
निर्विघ्नं कुरु मे देव, सर्वकार्येषु सर्वदा ॥ २ ॥

पार्वती पूजन

आवाहन मंत्र—हेमाद्रितनयां देवीं वरदां शंकर-प्रियाम्।
लम्बोदरस्य जननीं गौरीमावाहयाम्यहम् ॥
पूजन करके प्रार्थना करे—ॐअम्बे अम्बिके अम्बालिके नमानयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥

फिर नन्दीश्वरादिका पूजन करके शिवजीका ध्यान करें।

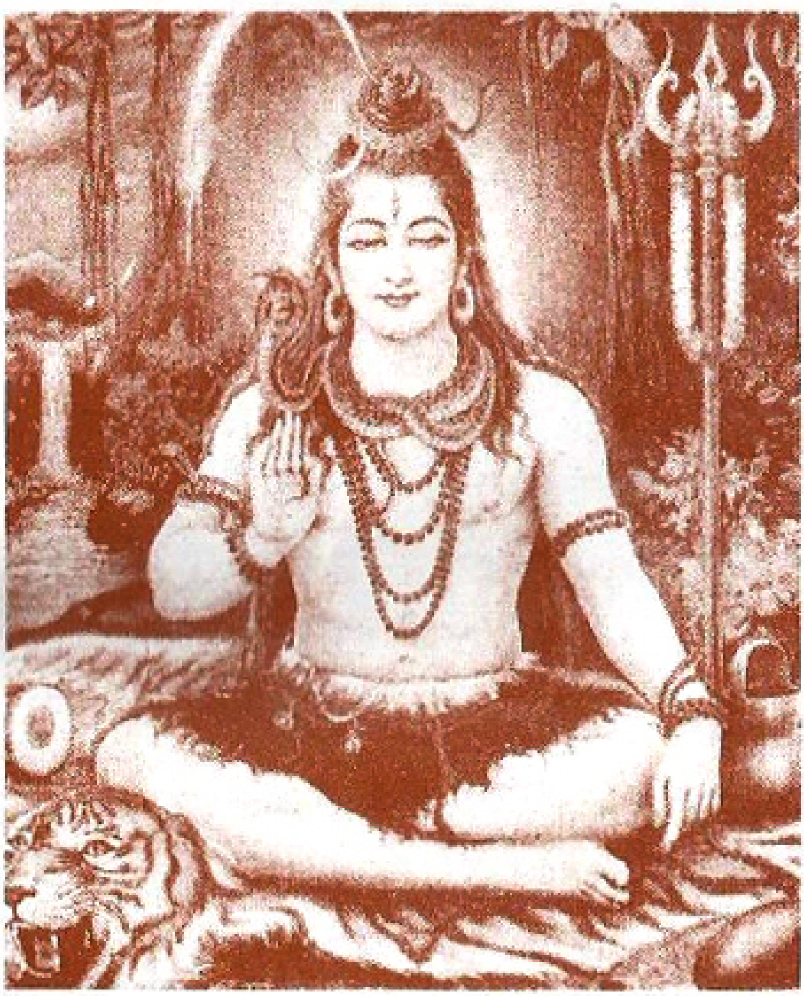
ध्यान मन्त्र

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारु-चन्द्रावतंसं।
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ॥
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिवसानं।
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

आसन मन्त्र—रम्यं सुशोभनं दिव्यं, सर्वसौख्यकरं शुभम्।
आसनं च मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥ आसनं समर्पयामि ॥

ॐकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥ १ ॥
नमन्त्यृषयो देवा नमन्त्यप्सरसां गणाः ।
नरा नमन्ति देवेशं नकाराय नमो नमः ॥ २ ॥

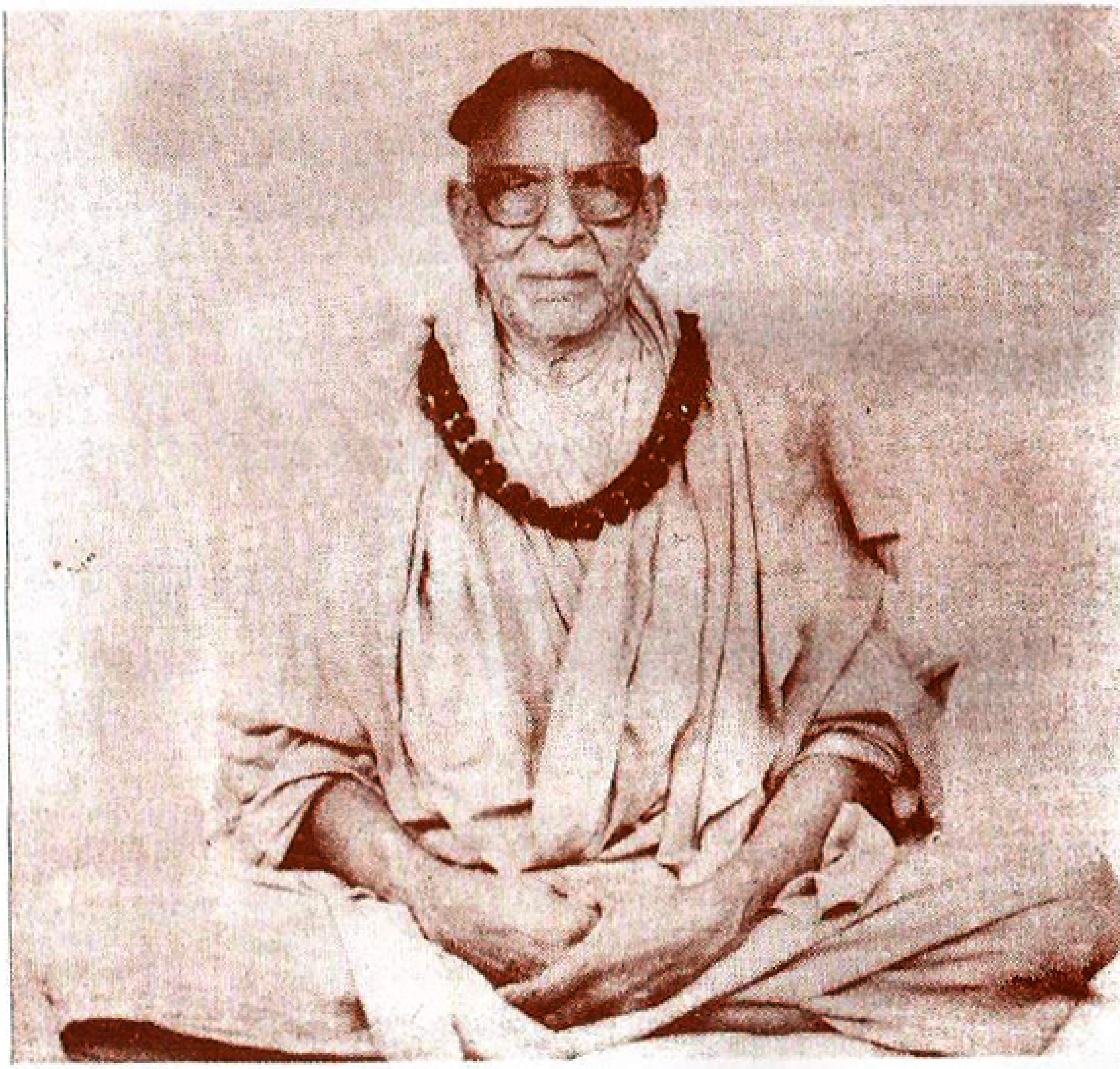
ॐ न मः शि वा य



महादेवं महात्मानं महाध्यानपरायणम् ।
महापापहरं देवं मकाराय नमो नमः ॥ ३ ॥
शिवं शान्तं जगन्नाथं लोकानुग्रहकारिणम् ।
शिवमेकपदं नित्यं शिकाराय नमो नमः ॥ ४ ॥

वाहनं वृषभो यस्य वासुकिः कण्ठभूषणम् ।
वामे शक्तिधरं देवं वकाराय नमो नमः ॥ ५ ॥

यत्र यत्र स्थितो देवः सर्वव्यापी महेश्वरः ।
यो गुरुः सर्वलोकानां यकाराय नमो नमः ॥ ६ ॥



येषां ज्ञानैकसिन्धुः प्रवहति भुवनेऽक्षुण्णधार-प्रपूतो
वैराग्याधारभूताः प्रशमितशमनाश्चाग्रगण्या यतीनाम् ।
वेदान्ताद्याचकास्संपरिवृतमतयो नर्मदावासिनो ये,
ओङ्कारानन्द - मोक्षप्रभवगुणगणालङ्कृतानर्चयामः ॥

पाद्यं—उष्णोदकं निर्मलं च, सर्वसौगन्धसंयुतम् ।
पादप्रक्षालनार्थाय दत्तं ते प्रतिगृह्यताम् ॥ पाद्यं सम०

अर्घ्यं—तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम् ।
तापत्रयविनिर्मुक्तं, तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ॥ अर्घ्यं सम०

आचमनं—सर्वतीर्थसमायुक्तं, सुगन्धि निर्मलं जलम् । (आचमनीयं
आचम्यतां मया दत्तं गृहीत्वा परमेश्वर ॥ जलं सं०)

स्नानं—गङ्गा-सरस्वती-रेवा-पयोष्णी-नर्मदा जलैः ।
स्नापितोऽसि मया देव, तथा शान्ति कुरुष्व मे ॥ स्नानं सम०

दुग्धस्नानं—कामधेनुसमुत्पन्नं, सर्वेषां जीवनं परम् । (दुग्धस्नानं
पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम् ॥ स० पुनर्जलं०)

दधिस्नानं—पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशिप्रभम् । (दधि स्ना०
दध्यानीतं मया देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ स० पुनर्जल०)

घृतस्नानं—नवनीतसमुत्पन्नं सर्वसन्तोषकारकम् । (घृतस्नानं स०
घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ पुनर्जलं स०)

मधुस्नानं—तरुपुष्पसमुद्भूतं, सुस्वादु मधुरं मधु । (मधु स्नानं स०
तेजः पुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ पुनर्जलं स०)

शर्करास्नानं—इक्षुसारसमुद्भूता शर्करा पुष्टिकारिका । शर्करास्नानं स०
मलापहारिका दिव्या स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ पुनर्जलं स०)

पञ्चामृतस्नानं—पयो दधि घृतं चैव मधु च शर्करायुतम् । पञ्चामृतस्नानं स०,
पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ पुनर्जलं स०

शुद्धोदकस्नानं—मन्दाकिन्यातु यद्वारि सर्वपापहरं शुभम् ।
तदिदं कल्पितं देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ शुद्ध स्नानं स०
अभिषेक जलधारा छोड़ें ।

वस्त्रं—सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे । वस्त्रे स०,
मयापसादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ॥ वस्त्रान्ते आच०

यज्ञोपवीतं—नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम् ।
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥ य० स०

गन्धं—श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥ गन्धं स०

अक्षतान्—अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुंकमाक्ताः सुशोभिताः ।
मया निवेदिना भक्त्या, गृहाण परमेश्वर ॥ अक्ष० स०

पुष्पं—माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।
मयानीतानि पुष्पाणि गृहाण परमेश्वर ॥ पुष्पाणि स०

बिल्वपत्रं—त्रिदलं त्रिगुणाकारं, त्रिनेत्रं च त्रिधायुधम् ।
त्रिजन्मपापसंहारं बिल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥ वि० स०

तुलसी—तुलसीं हेमरूपांच रत्नरूपांच च मञ्जरीम् ।
भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥ तुल० स०

दूर्वा—विष्णवादि-सर्वदेवानां, दूर्वे त्वं प्रीतिदा यतः ।
क्षीरसागरसम्भूते वंशवृद्धिकरी भव ॥ (दूर्वांकुरान् स०)

धूपः—वनस्पति-रसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ (धूपमाघ्रापयामि)

दीपं—आज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम् ॥
(दीपं दर्शयामि) हस्तं प्रक्षालयेत्

नैवेद्यं—शर्कराघृतसंयुक्तं मधुरं स्वादु चोत्तमम् ।
उपहारसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

मध्येपानीयं—अतितृप्तिकरं तोयं सुगन्धि च पिबेच्छया ।
त्वयि तृप्ते जगत् तृप्तं नित्यतृप्तं महात्मनि ॥ (मध्ये पा० सम०)

ऋतुफलानि—फलानि यानि रम्याणि स्थापितानि तवाग्रतः ।
तेन मे सुफला वाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ (ऋ० स०)

आचमनं—गङ्गाजलं समानीतं सुवर्णकलशस्थितम् ।
आचम्यतां सुरश्रेष्ठ शुद्धमाचमनीयकम् ॥ (आचमनीयं स०)

ताम्बूलं पूगीफलं—पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
एलाचूर्णादिसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥
(ता० पु० स०)

दक्षिणा—न्यूनातिरिक्तपूजायां सम्पूर्णफलहेतवे ।
दक्षिणां कांचनीं देव स्थापयामि तवाग्रतः ॥
(द्रव्यदक्षिणां स०)

शिव-नीराजनं (आरती)[1]

ॐजय गङ्गाधर हर शिव जय गिरिजाधीश । शिव जय गौरीनाथ ॥ त्वं मां पालय नित्यं २ कृपया जगदीश ॥ ॐहर हर हर महादेव ॥ १ ॥ कैलासे गिरि शिखरे कल्पद्रुम विपिने । गुञ्जति मधुकरपुञ्जे कुञ्जवने गहने ॥ कोकिल कूजति खेलति हंसावलि ललिता । रचयति कलाकलापं नृत्यति मुदसहिता ॥ ॐहर० ॥२॥ तस्मिंल्ललितसुदेशे शालामणि रचिता, तन्मध्ये हर निकटे गौरी मुदसहिता ॥ क्रीडां रचयति भूषां रञ्जितनिजमीशं । इन्द्रादिकसुरसेवित प्रणमति ते शीर्षम् ॥ ॐहर० ॥३॥ विबुधवधूर्बहु नृत्यति हृदये मुदसहिता । किन्नरगानं कुरुते सप्तस्वरसहिता ॥ धिनकत थै थै धिनकत मृदङ्ग वादयते । क्वण-क्वण ललिता वेणुर्मधुरं नादयते ॥ ॐ हर० ॥४॥ रुण-रुण चरणे रचयति नूपुरमुज्वलितं । चक्रावर्ते-भ्रमयति २ कुरुते तान् धिक तां ॥ तां तां लुपचुप तालं नादयते । अंगुष्ठांगुलिनादं २ लास्यकतां कुरुते ॥ ॐ हर० ॥ ५ ॥ कर्पूरद्युति-गौरं पञ्चाननसहितं शिव० त्रिनयन शशिधर मौलि २ विषधरकण्ठयुतम् ॥ सुन्दरजटाकलापं पावकयुतभालं शिव० डमरू त्रिशूलपिनाकं २ करधृत नृकपालं ॥ ॐ हर० ॥६॥ शङ्खनिनादं कृत्वा झल्लरि नादयते । नीराजयते ब्रह्मा नी० वेदऋचां पठते ॥ इति मृदु-चरणसरोजं हृदि कमले धृत्वा । अवलोकयति महेशं शि० ईशमभिनत्वा ।

---

१. प्रथम चरणोंकी चार बार, नाभिकी दो बार, मुखारबिन्दकी एक बार या तीन बार और समस्त अंगों की सात बार आरती करें ।

ॐ हर० ॥७॥ मुण्डैरचयति मालां पन्नगमुपवीतं । वाम विभागे गिरिजा २ रूपमति ललितं । सुन्दरसकलशरीरे कृतभस्माभरणं । इति वृषभध्वजरूपं २ (हरशिवशङ्कररूपं) तापत्रय हरणं ॐ हर० ॥८॥ ध्यानं आरति समये हृदये इति कृत्वा । रामं त्रिजटानाथं (शम्भुं त्रिजटानाथं) ईशमभिनत्वा । सङ्गीत-मेवं प्रतिदिनपठनं यः कुरुते । शिवसायुज्यं गच्छति २ भक्त्या यः शृणुते ॥ ॐ हर० ॥९॥ जय गङ्गाधर हर शिव जय गिरिजाधीश० ॥

शिव-स्तुतिः

ॐ वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं,
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
वन्दे सूर्य-शशांक-वह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं,
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥१॥

शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षिणाङ्गे वहन्तम् ।
नागं पाशं च घण्टां डमरुकसहितं सांकुशं वामभागे,
नानालंकारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥२॥

कर्पूरगौरं करुणावतारं, संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ॥३॥

मन्दारमालाकलितालकायै, कपालमालांकितशेखराय ।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय, नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥४॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरु-वरशाखा-लेखनी-पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥५॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥६॥

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा,
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व,
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥७॥
चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे,
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे ।
दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे,
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥८॥

पुष्पाञ्जलिः

हरिः ॐतत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् । ॐयज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

ॐराजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने । नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे । स मे कामान् कामकामाय मह्यम् । कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु । कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ।

ॐविश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् । सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥

नाना सुगन्धपुष्पाणि यथा कालोद्भवानि च ।
पुष्पाञ्जलिं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥

पुष्पांजलि अर्पण करके प्रणाम करे । बैठकर महिम्न पाठ करके पश्चात् प्रदक्षिणा आदि करे—

प्रदक्षिणा मन्त्र—यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिणा पदे-पदे ॥

क्षमा प्रार्थना—आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् कारुण्यभावेन रक्ष-रक्ष महेश्वर ॥

शिवमहिम्नः स्तोत्रम्

गजाननं भूतगणाधिसेवितं, कपित्थ-जम्बू-फल-चारु-भक्षणम् ।
उमासुतं शोक-विनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजम् ॥१॥

श्री पुष्पदन्त उवाच[1]

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी ।
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ॥
अथाऽवाच्यः सर्वः स्वमति-परिणामावधि गृणन् ।
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥१॥

अतीतः पंथानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्याऽयं चकित-मभिधत्ते श्रुतिरपि ॥
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः ।
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥

महिम्न स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद

हे हर ! तव अपार महिमा का पार न पा करते स्तुति अज्ञ ।
यदि स्वरूप अनुरूप न हो वह तो ब्रह्मादि क्या न अनभिज्ञ ?
अपनी बुद्धि बलादि जहाँ तक करें गान यदि वे न सदोष ।
त्रिविधताप हर ? मेरा भी तब यह है स्तुति-उद्यम निर्दोष ॥१॥

× × ×

मन वाणी के पथ से रहती परे तुम्हारी महिमा नाथ !
मूर्त-अमूर्त निषेधवृत्ति से कहते वेद न देते साथ ॥
किसकी स्तुति के योग्य कौन गुणवाला किसका विषय बतायें ।
दिव्य प्रकट चैतन्य रूप में मन वाणी हाँ सबके जायँ ॥२॥

---

१. पुष्पदन्त नामके गन्धर्वराज आकाश मार्गसे मृत्युलोक आकर नित्य किसी उपवन से पुष्प चुराते रहे। उन्हें निगृहीत करनेके लिए शिव-निर्माल्य वहाँ बिछाया। उसपर पैर पड़ते हो वे शक्तिहीन हो गये। तब यह स्तोत्र रचकर उन्होंने स्तुति की और पूर्ववत् अपनी महिमासे पुनः युक्त हो गये।

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ॥
मम त्वेतां वाणीं गुणकथन-पुण्येन भवतः ।
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥ ३ ॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदय-रक्षाप्रलयकृत् ।
त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ॥
अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं ।
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥ ४ ॥

किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं ।
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ॥
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः ।
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥ ५ ॥

मधुसम मधुर काव्य गुण पूरित अमर वेदवाणी कर्तार !
विस्मित क्या कर सके तुम्हें, सुरगुरु वाचा हे सर्वाधार !
वाणी अपनी पावन करलूँ पुण्यप्रद करके गुणगान ।
इसीलिए त्रिपुरारि ! हमारी मति इसमें लग रही सुजान ॥ ३ ॥

× × ×

वरदायक हे नाथ ! तुम्हारा सृष्टि-स्थिति-लय जिसका रूप ।
वेदों में प्रतिपाद्य गुणत्रय विधि-हरि-हरमय-भिन्नस्वरूप ॥
खण्डन करने उस वैभव का बोलें कोई वचन विमूढ़ ।
नहीं श्रेय के भागी उनको सुन्दर लगे असुन्दर गूढ़ ॥ ४ ॥

× × ×

कैसा यत्न विधाता करता ? क्या शरीर है ? कौन उपाय ?
कहाँ बैठकर रचता ? निश्चित क्या सामग्री ? किससे लाय ?
यह कुतर्क मूढ़ों का होता तुझ अचिन्त्य वैभव में जाल ।
अवसर हीन प्रलाप, मन्दजन-भ्रान्ति हेतु करता वाचाल ॥ ५ ॥

अजन्मानो लोकः किमवयव-वन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधि-रनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो।
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥ ६ ॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति।
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ॥
रुचीनां वैचित्र्यादृजु-कुटिल-नाना-पथजुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयासामर्णव इव ॥ ७ ॥

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्मफणिनः।
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ॥
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणहितां।
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥ ८ ॥

भूर्भुवादि ये लोक सावयव क्या उत्पत्ति रहित हों सिद्ध ?
जगदुत्पत्ति उपक्रम कोई कर्ता विना न होंय प्रसिद्ध ॥
ईश्वर भिन्न जगत् यदि कोई रचे, कहें, क्या उसके पास ?
है सामग्री, व्यर्थ देववर ! तुझ प्रति संशय करें कुदास ॥ ६ ॥

× × ×

वेद समग्र, शास्त्र सांख्यादिक, वैष्णव-शैव-सन्त-मत-भिन्न।
यह हितकर, वह परम श्रेष्ठ पथ, रुचि विचित्रता से परिछिन्न ॥
सरल, कुटिल नानागति से ज्यों सरिताएँ समुद्र में जाँय।
सभी भक्त त्यों हे शिवशम्भो ! एक आपको ही अपनाँय ॥ ७ ॥

× × ×

बूढ़ा बैल एक, वरदायिन् ! खटिया का पाया, मृगचर्म।
भस्म, सर्प, बस नरकपाल गृह = विश्वभरण का इतना मर्म ॥
किन्तु देवगण भृकुटि हिलाते पाये दिव्य भोग भरपूर।
आत्मारामहि नहीं भ्रमाती विषयरूप मृगतृष्णा, दूर ॥ ८ ॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकल-मपरस्त्वध्रुवमिदं ।
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।।
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव ।
स्तुवञ् जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ।।९।।

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरञ्चिर्हरिरधः ।
परिच्छेत्तुं यातावनल-मनल-स्कन्धवपुषः ।।
ततो भक्ति-श्रद्धाभर-गुरु-गृणद्भ्यां गिरिश यत् ।
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ।।१०।।

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैर-व्यतिकरं ।
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।।
शिरः पद्मश्रेणी-रचित-चरणाम्भोरुहबलेः ।
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ।।११।।

कँहहि नित्य सांख्यादि जगत् सब त्रिपुरारे ! कहँ बौद्ध अनित्य ।
सदसद् विषय पृथक् धर्मीका कहें तारकिक नित्य-अनित्य ।।
विस्मित बुद्धिवादियोंसे मैं स्तुति करता नहि शंकित होत ।
लज्जा कहाँ मुखरता या सच हुई धृष्टता ओत-प्रोत ।। ९ ।।

× × ×

तेजपुँज ज्योतिर्मय विग्रह लगे मापने विधि हरि दोय ।
अन्तरिक्ष पाताल छान वे आदि अन्त नहि पाये कोय ।।
संस्तुति किए भाव भरपूरित श्रद्धाभक्ति विनय युत होय ।
हे गिरीश ! क्यों नहीं फलेगी ? सेवा भला ! आपकी कोय ।। १० ।।

× × ×

विन प्रयास वह किया दशानन भुवनत्रय कण्टकसे हीन ।
रणके लिए सदा खुजलाता रहा भुजाएँ धार अदीन ।।
मस्तकमयी कमलमाला जो पादपद्म में कीन्ही दान ।
त्रिपुरारे ! तब अचल भक्ति का है प्रताप या सब सम्मान ।। ११ ।।

अमुष्य त्वत्सेवा समधिगतसारं भुजवनं।
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः॥
अलभ्या पातालेऽप्यलस-चलितांगुष्ठ-शिरसि।
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्-ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः॥१२॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती—
मधश्चक्रे बाणः परिजन-विधेयस्त्रिभुवनः।
न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरि त्वच्चरणयो—
र्न कस्याउन्नत्यै भवति शिरस्त्वय्यवनतिः॥१३॥

अकाण्ड-ब्रह्माण्ड-क्षयचकित-देवासुरकृपा—
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयनविषं संहृतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभय-भंगव्यसनिनः॥१४॥

अहो! आपकी सेवासे ही सबल भुजावन पाकर क्रूर।
वासस्थल कैलास उठाकर लगा दिखाने बल भरपूर॥
आलस भरे अँगूठेसे कुछ उसे आपने दिया दबाय।
लगा नहीं पाताल ठिकाना प्रभुता पाय नीच गर्राय॥ १२॥

× × ×

वशवर्ती त्रैलोक्य किया वह बाणासुर वरदायक! नाथ।
अत्युन्नत सुरेन्द्र का वैभव करके तुच्छ दिखाया साथ॥
नहीं कोइ आश्चर्य आपके पद पंकज में शीश झुकान।
किस उन्नति का हेतु न है अह! मस्तक-नति अभ्युन्नति जान॥ १३॥

× × ×

अकस्मात् ब्रह्माण्ड नाश की आशङ्का से आतुर मान।
देख त्रिलोचन! भीत सुरासुर किया दयावश विष का पान॥
कालकूट की अहह! कालिमा नीलकण्ठ में शोभित आज।
उपकारी का दूषण भूषण = विकृत सुकृतमय रहा विराज॥ १४॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश त्वामितर-सुर-साधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥

महीपादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्-भुजपरिध-रुग्ण-ग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौ-र्दौस्थ्यं यात्यनिभृत-जटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥

वियद्व्यापी तारागण-गुणित-फेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद् द्वीपाकारं जलधि-वलयं तेन कृतमि—
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥१७॥

विजयशील वे बाण काम के देव दनुज मनुजादि समस्त।
कर लेते स्वाधीन विश्व को सफल सदा रहते अभ्यस्त॥
वही काम साधारण तुझको समझ ईश! करता है लक्ष्य।
हुआ संस्मरण योग्य, तिरस्कृति जितेन्द्रियों की क्या हो पथ्य ?॥ १५॥

× × ×

आप जगत् की रक्षा करते मोहित आसुरि लोक समस्त।
ताण्डव नृत्य चरण क्षेपण कर भूमण्डल को संशय ग्रस्त॥
भुजा घूमतीं आयुध सीं तव व्याकुल भुवर्लोक हो जात।
जटाघात से स्वर्ग न सुस्थिर प्रभुता भी प्रतिकूल लखात॥ १६॥

× × ×

व्याप्त गगन गत तारागण से उपमित होता जिसका फेन।
त्रिपथगामि जल के प्रवाह की उद्गत शोभा अद्भुत देन॥
सप्त सिन्धु भर देत वही फिर शिव की जटा माँहि हो बिन्दु।
गङ्गा होत अहो! महिमामय है तव दिव्य शरीर असिन्धु॥ १७॥

× × ×

रथः क्षोणी यन्ता शतधृति-रगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुर-तृण-माडम्बरविधि—
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो—
र्यदेकोने तस्मिन्निज-मुदहरन्नेत्र-कमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१९॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदान-प्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥

तृणसम त्रिपुर भस्म करनेको वसुधाको रथ करते ईश।
ब्रह्मा सारथि धनुष मेरुको रवि शशि चक्र बना जगदीश॥
चक्रपाणिको बाण बनाते आडम्बर था या कुछ तन्त्र।
नहिं समर्थ स्वाधीन बुद्धियाँ उपकरणों को हों परतन्त्र॥ १८ ॥

× × ×

श्रीहरि नित तव चरण कमलमें करें सहस्र कमल उपहार।
कमी एकके होनेपर झट नेत्रकमल निज दिया निकार॥
अर्पित हुआ त्रिपुरहर! ज्योंही भक्ति चरम सीमाके पार।
हुए सुदर्शन चक्र युक्त वे जगरक्षक त्रिलोक भरतार॥ १९ ॥

× × ×

पूर्ण हुए यज्ञादिक सोते फल देनेको जगते आप।
यजमानोंको नष्ट कर्म क्या फल देंगे ? देंगे सन्ताप॥
अतः पुरुषको कर्म साक्षि लख वैदिक क्रिया कलाप प्रवृत्त।
श्रद्धासे आराधन करते जन, चेतनको बना निमित्त॥ २० ॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपति-रधीशस्तनुभृता—
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफल-विधान-व्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुर-मभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभ-मभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषु-मृष्यस्य वपुषा ।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं,
त्रसंतं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नायतृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदिः स्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥२३॥

क्रिया निपुण अधिनायक सबके दक्ष प्रजापति थे यजमान।
ऋषिगण ऋत्विज होता होकर सुरगण सभी सभासद जान ॥
रहे वहाँ नारायण शरणद फलदाता तुम थे शिव ! दूर।
श्रद्धाहीन होय मखघातक लखो यज्ञ वह चकनाचूर ॥ २१ ॥

× × ×

(सन्ध्यामयी लालिमासे लग रागी रवि ब्रह्माको जान) ।
मृगी रोहिणी कन्या पीछे मृग विधि कामुक धाए मान ॥
मृगवेधन उत्साह आपका बाण आर्द्र नक्षत्र तुरन्त ।
पीछे लगा व्यथित करता प्रभु विधि मृग शिरहिं स्वर्गपर्यन्त ॥ २२ ॥

× × ×

निज-सौन्दर्य-आश धनु-धारक कामदेवको तत्क्षण क्षार ।
हुआ देखकर भी यदि गिरिजा हूँ अर्धाङ्गिनि मुझसे प्यार ॥
संयम नियम वरिष्ठ देहमें रहकर मानें क्या आश्चर्य ।
त्रिपुरमथन ! युवती जन प्रायः भोली रहें लखें तात्पर्य ॥ २३ ॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः।
अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मंगलमसि ॥२४॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः !
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यंतस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२५॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥२६॥

कामान्तक ! मर्घटमें क्रीडा वरदायिन् ! भूतादिक संग।
नर कपाल या मुण्डमाल वह भस्म चिताओंकी है अंग॥
सभी अमङ्गल शील आपका रहे भले ! पर रूप अनूप।
ध्यानी सुमरक भक्तवृन्दको है मंगलमय परम स्वरूप ॥ २४ ॥

× × ×

योगी पुरुष प्राण मन आदिक हृदय कमलमें करें निरोध।
सजल नयन हर्षित-रोमाञ्चित आनन्दित अभ्यन्तर शोध॥
परमानन्द सुधामय सर में हों निमग्न वे जो सुख पाँय।
निःसन्देह तत्त्व वह तुम हो शिव स्वरूप में रहें समाँय ॥ २५ ॥

× × ×

तुम्हीं सूर्य हो चन्द्र तुम्ही हो गगन पवन तुम सदा अरूप।
पावक जल वसुधा थल तुम हो आत्मतत्त्व यजमान स्वरूप॥
अष्टमूर्तिमय कहँहि तुम्हें परिच्छिन्न वचन मतिवृद्ध लखाँय।
हम तो अन्य तत्त्व नहिं जानें शिव ! जो आप न हों बतलाँय ॥२६॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा—
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद ! गृणात्योमिति पदम् ॥२७॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महाँ—
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव ! श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहित-नमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव ! दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर ! महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन ! यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति सर्वाय च नमः ॥२९॥

व्यस्त प्रणव मात्रात्रय, तीनों वेद, अवस्थातीत लखाय ।
तीन लोक, त्रयदेव तथा वह शक्तिवृत्तिसे व्यस्त बताय ॥
प्रणव समस्त सूक्ष्म ध्वनियोंसे तुझ समस्तका लक्ष्य कराय ।
निर्विकार चैतन्य धाम नित पद तुरीय को वह दर्शाय ॥ २७ ॥

× × ×

रुद्र-उग्र-भव-भीम-शर्व ये पशुपति-महादेव-ईशान ।
करें देव नामाष्टक वर्णन वेद शास्त्र क्या सभी पुराण ॥
श्रुति प्रतिपाद्य विवेचनीय जप योग्य रहे जब ये सब नाम ।
स्वप्रकाश सुखमय शिव तुमको हो बस बारम्बार प्रणाम ॥ २८ ॥

× × ×

निर्जन वन प्रिय ! अति समीप अतिदूर रूप को नमो नमः ।
हे कामदहन ! अति लघुस्वरूप अति महद्रूप को नमो नमः ॥
त्रिनयन ! अतिशय वृद्धरूप, अति युवक रूपको नमो नमः ।
वह सर्व नाम यह सर्वरूप, है तुझको सब नमो नमः ॥ २९ ॥

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥

कृशपरिणतिचेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धि।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधा—
द्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥३२॥

बढ़े रजोगुण सृष्टिसमय, भव ब्रह्मदेव को नमो नमः।
प्रबल तमोगुण प्रबल कालहर-रुद्ररूप को नमो नमः॥
जन सुख कारण सत्त्व बढ़े, मृड-विष्णु मूर्ति को नमो नमः।
मोक्षपदस्थित गुणातीत, शिव-परमब्रह्म को नमो नमः॥ ३०॥

× × ×

हे अभीष्टदायक ! कँह मेरा तुच्छ अविद्या कलुषित चित्त।
कहाँ आपकी गुण सीमा के पार महत्ता शाश्वत नित्त।
भक्ति आपकी उत्साहित कर करती बस मुझपर उपकार।
चरणकमल में चढ़वाती तब वचन सुमनमय यह उपहार॥ ३१॥

× × ×

नील शैल कर काजल स्याही वारिधिमय दवात में डाल।
कल्पद्रुम की बना लेखनी पत्र महीतल बना विशाल॥
लेकर पूर्ण समय यदि लिखती रहे भारती निशदिन ईश।
तो भी नहीं तुम्हारे गुणगण गिने जा सकें हे जगदीश॥ ३२॥

असुरसुर-मुनीन्द्रै-र्चितस्येन्दुमौले—
ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटे स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥३४॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं स्नानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३५॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शर्वमीश्वरवर्णनम् ॥३६॥

देव-दनुज-मुनिवृन्द-महात्मा-पूजित चन्द्रमौलि भगवान् ।
निर्गुण हुए दिव्य गुणगण से जो अविनाशी महिमावान् ॥
उनकी स्तुति यह बड़े वीर छन्दों में सुन्दर रचना कौन ।
पुष्पदन्त गन्धर्वराज ने जो गुणगण में रहा प्रवीण ॥ ३३ ॥

× × ×

जो कोई एकाग्र चित्तसे धूर्जटि शंकर का सं-स्तोत्र ।
परम भक्ति से प्रतिदिन पड़ता शुद्ध भाव रख नर वह सोऽत्र ॥
यहाँ उसे धन पूर्ण आयु यश पुत्र कलत्रादिक हों प्राप्त ।
जाता शिव के लोक होत शिवरूप सभी सन्ताप समाप्त ॥ ३४ ॥

× × ×

दीक्षा-दान तपस्तीर्थ-स्नान यज्ञादि कर्म भी ।
महिम्न-स्तोत्र वाणी की, कला सोलहवीं नहीं ॥ ३५ ॥
पुण्य-स्तोत्र हुआ पूरा, जो कि गन्धर्व ने कहा ।
अनूठा है मनोहारी, शुभ ईश्वर वर्णकं ॥ ३६ ॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३७॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशु-शशि-धर-मौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद् दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३८॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३९॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ।
कंठस्थितेन पठितेन समाहितेन सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥

शिव से न परे देव, इससे अन्य न स्तुतिः ।
मन्त्रः अधोर से नान्यत्, न तत्त्व गुरु से परे ॥ ३७ ॥

× × ×

कुसुमदशन नामी सर्व गन्धर्व राजा,
शिशु-शशि-शिरधारी श्रीमहादेवदास ।
वह निज महिमा से भ्रष्ट जो कोप से था,
तब यह रचना की दिव्य में दिव्य जो है ॥ ३८ ॥

× × ×

सुरनर मुनियों से पूज्य मोक्षादि भी जो
यह स्तुति फलदायी पुष्पदन्ता बनाई ।
मनुज यदि पढ़ेगा हाथ जोड़े अनन्य
शिव निकट बसे जा वन्द्य होता सुरोंसे ॥ ३९ ॥

श्रीपुष्पदन्तमुखसे निकला हुआ ये, है पापहारि हरको प्रिय भी लगे जो ।
कण्ठस्थ पाठ सुसमाहित हो इसीसे, होते प्रसन्न अति भूतपतीश ईश ॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४१॥

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव ! प्रसीद परमेश्वर ! ॥४२॥

हरिः 'ॐपूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

श्रीपुष्पदन्ताचार्यविरचितं शिवमहिम्नः स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

ऐसी ये वाचिकी पूजा, शंभु-श्रीपादपद्म में ।
अर्पिता इससे देव, हों सन्तुष्ट सदाशिव ॥ ४१ ॥
वर्ण या पद जो भ्रष्ट, मात्रा हीन तथा हुआ ।
कीजे सब क्षमा देव ! परमेश प्रसन्न हो ॥ ४२ ॥

अर्थ समग्र सरलता पूर्वक धारण करने को अनुवाद ।
यति ओंकारानन्द किये यह आशुतोष का पाय प्रसाद ॥
संस्कृत बिना असंस्कृत जीवन जिनका प्रायः रहे अपूर्ण ।
शिव की महिमा वे यह गाकर करलें सभी मनोरथ पूर्ण ॥

अथ शिवनामावलिः

ॐमहादेव शिवशङ्कर शम्भो उमाकान्त हर त्रिपुरारे ।
मृत्युञ्जय वृषभध्वज शूलिन् गङ्गाधर मृड मदनारे ॥
हर शिव शङ्कर गौरीशं वन्दे गङ्गाधरमीशं ।
रुद्रं पशुपतिमीशानं कलये काशीपुरिनाथं ॥
जय शम्भो ! जय शम्भो ! शिव गौरीशङ्कर जय शम्भो ।
जय शम्भो ! जय शम्भो ! शिव गौरीशङ्कर जय शम्भो ॥
शिव शिवेति शिवेति शिवेति वा, हर हरेति हरेति हरेति वा ।
भव भवेति भवेति भवेति वा, मृड मृडेति मृडेति मृडेति वा ॥
भज मनः शिवमेव निरन्तरम् । जप मनः शिवमेव निरन्तरम् ।
रट मनः शिवमेव निरन्तरम् । स्मर मनः शिवमेव निरन्तरम् ॥

शिवपञ्चाक्षर तथा रुद्राष्टक

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय, भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय, तस्मै नकाराय नमः शिवाय ॥१॥

मन्दाकिनी-सलिलचन्दन-चर्चिताय नदीश्वर-प्रमथनाथ महेश्वराय।
मन्दारपुष्प-बहुपुष्पसुपूजिताय, तस्मै मकाराय नमः शिवाय ॥२॥

शिवाय गौरी-वदनाब्जवृन्द-सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै शिकाराय नमः शि[illegible]य ॥३॥

वशिष्ठ-कुम्भोद्भव-गौतमार्यं-मुनीन्द्र-देवार्चित-शेखराय।
चन्द्रार्क-वैश्वानर-लोचनाय, तस्मै वकाराय नमः शिवाय ॥४॥

यक्षस्वरूपाय जटाधराय, पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय, तस्मै यकाराय नमः शिवाय ॥५॥

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोक-मवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥६॥

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिराज्ञान गोतीतमीशं गिरीशं॥
करालं महाकालकालं कृपालुं। गुणागार संसार पारं नतोऽहं॥
तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं॥
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी-चारुगंगा। लसद्भाल बालेन्दु कंठे भुजंगा॥
चलत्कुण्डलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालुं॥
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटि-प्रकाशं॥
त्रयः शूल-निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं॥
कलातीत कल्याणकल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी॥
चिदानंद संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥

न यावद् उमानाथ पादारविंदं । भजन्तीह लोके परे वा नराणां ॥
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं । प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजां । नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यं ॥
जराजन्मदुःखौघ तातप्यमानं । प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो ॥

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति ॥

श्रीशिव–मानसपूजा

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं,
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम् ।
जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा,
दीपं देव दयानिधे ! पशुपते ! हृत्कल्पितं गृह्यताम् ॥ १ ॥

सौवर्णे मणिखन्डरत्नरचिते पात्रे घृतं पायसं,
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पानकम् ।
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्वलम्,
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो ! स्वीकुरु ॥२॥

छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं,
वीणाभेरिमृदङ्गकाहलकला गीतं च नृत्यं तथा ।
साष्टाङ्गं प्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत्समस्तं मया,
सङ्कल्पेन समर्पितं तव विभो ! पूजां गृहाण प्रभो ॥ ३ ॥

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो ! तवाराधनम् ॥४॥

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम् ।

विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व,
जय जय करुणाब्धे ! श्रीमहादेव शम्भो ॥५॥

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गानि

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारममलेश्वरम् ॥ १ ॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥ २ ॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।
हिमालये तु केदारं घुसृणेशं शिवालये ॥ ३ ॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः ।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥४॥

शिवज्योतिः तथा अन्य कीर्तन ध्वनियां

सोमनाथं शिवं रामनाथं शिवं मल्लिकेशं शिवं श्रीमहाकालकम् ।
विश्वनाथं शिवं वैद्यनाथं शिवं, नर्मदातीर-मोङ्कारनाथं भजे ॥१॥
त्र्यम्बकं साम्बकं डाकिनी-शङ्करं, धाम घृष्णेश्वरं नागनाथं शिवम् ।
हैमकेदारकं ज्योतिरीशं महत्, तुङ्गनाथं शिवं शूलपाणिं भजे ॥२॥
ऋद्धनाथं शिवं सिद्धनाथं शिवं, देवदेवाधिपं नीलकण्ठं शिवम् ।
चन्द्रमौलीश्वरं भूतनाथं शिवं, पञ्चतत्त्वात्मकं पूर्णरूपं भजे ॥३॥
लोकनाथं शिवं लोकबन्धुं शिवं, लोकलीलालयं तन्मयं चिन्मयम् ।
शम्भु-मीशान-मन्तर्बहिर्व्यापकं, वीतरागं सदानन्दकन्दं भजे ॥४॥
विश्ववन्द्यं शरण्यं विधात्रादिभिः,
दानवारिं हरं पापहारिं हरम् ।
देहभाजां गतिं श्रीभवानीपतिं,
निग्रहानुग्रहा-तायिनं तं भजे ॥५॥
भक्तिभाव्यं शिवं योगसाध्यं शिवं,
ध्यानपूर्णं शिवं ज्ञानगम्यं शिवम् ।

ज्योतिरात्मस्वरूपं शिवं शाश्वतं,
निर्विवादं निजानन्दरूपं भजे ॥ ६ ॥

सौम्यमूर्ति परं रुद्ररूपं हरं,
विश्वरूपं भवं ब्रह्मरूपं शिवम् ।
सर्ववेदान्त-वेद्यं महेशं परं,
सर्वदा सच्चिदानन्दरूपं भजे ॥ ७ ॥

योगदं ज्ञानदं नित्यमानन्ददं
शुद्धबोधोदयं निर्गुणं निष्क्रियम् ।
दक्षिणामूर्तिरम्यं शिवं श्रीगुरुं,
सिद्धसेव्यं सदानन्दरूपं भजे ॥ ८ ॥

शिव-ज्योतिरन्तर्मुखाराधकं च,
शिव-ज्योतिरन्तर्बहि-र्व्यापकं च ।
शिव-ज्योतिरन्तस्तमोहारकं च,
सदाऽहं शिवज्योतिरात्म-स्वरूपम् ॥ ९ ॥

गोबिन्द हरे गोपाल हरे, जय जय प्रभु दीनदयाल हरे ॥ १ ॥
श्रीराम जय राम जय जय राम, श्रीराम जय राम जय जय राम ॥ २ ॥
शिव शिव शिव शिव शिवाय नमॐ, हर हर हर हर हराय नमॐ ॥ ३ ॥
जय सियाराम जय-जय हनुमान्, सङ्कट मोचन कृपानिधान ॥ ४ ॥
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण, भजमन नाराय० नाराय० नाराय० ॥५॥

जय अम्बे जय जय अम्बे, जय दुर्गे जय जय दुर्गे ॥ ६ ॥
हर हर महादेव शम्भो, काशी विश्वनाथ गङ्गे ॥ ७ ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥ ८ ॥
शिव शिव शङ्कर, हर हर महादेव ।
हरि हरि नारायण गोबिन्द वासुदेव ॥ ९ ॥

अच्युतं केशवं रामनारायणं, कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम् ।
श्रीधरं माधवं गोपिकाबल्लभं, जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥ १० ॥

प्रसिद्ध स्तुति-प्रार्थनादि संग्रह :—

जय शिवशङ्कर, जय गङ्गाधर, करुणाकर करतार हरे,
जय कैलासी, जय अविनाशी, सुखराशी सुखसार हरे।
जय शशिशेखर जय डमरूधर जय-जय प्रेमागार हरे,
जय त्रिपुरारी, जय मदहारी, अमित अनन्त अपार हरे।
निर्गुण जय-जय सगुण अनामय, निराकार साकार हरे।
पारवतीपति हरहर शम्भो! पाहि-पाहि दातार हरे॥ १॥

जय रामेश्वर, जय जागेश्वर, वैद्यनाथ केदार हरे।
मल्लिकार्जुन, सोमनाथ जय, महाकाल, ओङ्कार हरे।
त्र्यम्बकेश्वर जय घुश्मेश्वर, भीमेश्वर जगतार हरे,
काशीपति श्रीविश्वनाथ जय, मङ्गलमय अघहार हरे।
नीलकण्ठ जय भूतनाथ जय, मृत्युञ्जय अविकार हरे।
पारवतीपति हर-हर शम्भो ! पाहि-पाहि दातार हरे॥ २॥

जय महेश जय जय भवेश, जय आदिदेव महादेव विभो,
किस मुख से हे गुणातीत, प्रभु तव अपार गुण वर्णन हो।
जय भवकारक, तारक, हारक, पातकदारक, शिवशम्भो !
दीन दुःखहर, सर्वसुखाकर, प्रेमसुधाकर की जय हो।
पार लगादो भवसागर से, बनकर करुणाधार हरे।
पारवतीपति हर-हर शम्भो ! पाहि-पाहि दातार हरे॥ ३॥

जय मनभावन, जय अति पावन, शोकनशावन शिवशम्भो,
विपद विदारन, अधम उधारन, सत्य सनातन शिवशम्भो।
सहजवचन, हर जलज-नयनवर, धवलवरन तन शिवशम्भो,
मदन कदनकर पापहरन हर, चरन मनन धन शिवशम्भो।
विवसन. विश्वरूप, प्रलयङ्कर जगके मूलाधार हरे।
पारवतीपति हर-हर शम्भो! पाहि-पाहि दातार हरे॥ ४॥

भोलानाथ कृपालु दयामय, औढरदानी शिव योगी।
निमिषमात्र में देते हैं नव-निधि मनमानी शिव योगी,
सरल हृदय अति करुणासागर अकथ कहानी शिव योगी।
भक्तों पर सर्वस्व लुटाकर बने मशानी शिव योगी।
स्वयं अकिञ्चन, जनमनरञ्जन पर शिव परमउदार हरे।
पारवतीपति हर-हर शम्भो! पाहि-पाहि दातार हरे ॥५॥

आशुतोष इस मोहमयी निद्रा से मुझे जगा देना।
विषम वेदना से विषयों की मायाधीश छुड़ा देना।
रूप सुधा की एक बूँद से जीवन्मुक्त बना देना,
दिव्य ज्ञानभण्डार युगल चरणों की लगन लगा देना।
एक वार इस मन मन्दिर में कीजे पद सञ्चार हरे।
पारवतीपति हर-हर शम्भो! पाहि-पाहि दातार हरे ॥६॥

दानी हो दो भिक्षा में अपनी अनपायिनि भक्ति प्रभो,
शक्तिमान् हो, दो अविचल निष्काम प्रेम की शक्ति प्रभो।
त्यागी हो दो इस असार संसार से पूर्ण विरक्ति प्रभो,
परमपिता हो दो तुम अपने चरणों में अनुरक्ति प्रभो।
स्वामी हो निज सेवक की सुन लेना करुण पुकार हरे।
पारवतीपति हर-हर शम्भो! पाहि-पाहि दातार हरे ॥७॥

तुम बिन बेकल हूँ प्राणेश्वर आ जाओ भगवन्त हरे,
चरण-शरण की बाँह गहो हे उमारमण प्रिय कन्त हरे।
विरह व्यथित हूँ दीन दुखी हूँ दीनदयालु अनन्त हरे,
आओ तुम मेरे हो जाओ आ जाओ श्रीमन्त हरे।
मेरी इस दयनीय दशा पर कुछ तो करो विचार हरे।
पारवतीपति हर-हर शम्भो! पाहि-पाहि दातार हरे ॥८॥

नर्मदे हर! नर्मदे हर! नर्मदे हर! पाहि माम्।
नर्मदे हर! नर्मदे हर! नर्मदे हर! रक्ष माम् ॥

हर शिव शंकर-कीर्तन

हर शिव शङ्कर गौरीशङ्कर झल्लरि की झंकार सुनी ।
हर शिव शङ्कर गौरीशङ्कर संकीर्तन की बनी ध्वनी ॥
सम्बोधन में हे हर बोलें भक्त विपद् हर भय हारी ।
पाप-ताप हर, काल क्लेश हर, रोग-शोक-हर सुखकारी ॥
बाधा-हर, हिय अन्धकार-हर ज्ञानप्रद रजतम हारी ।
जगज्जाल हर, बन्धन हर, हो रहे शम्भु प्रलयंकारी ॥हर शिव०॥१॥
शिव कल्याण स्वरूप तुम्हारा अशिव अमङ्गल के नाशी ।
शयन चराचर में शिव करते ले समाधि बैठे काशी ॥
काशी सर्व शरीर सुहाए ज्ञान प्रकाशो है काशी ।
जगमगाँय शिव ज्योतिर्मय हो मुक्तिधाम सेवें काशी ॥हर शिव०॥२॥
जगत् जीव सब शयन करे शिव में अथवा शिव अविनाशी ।
है प्रपञ्च उपशम जहँ पूरा शान्त रूप शिव अधिवासी ॥
विश्वादिक पद से तुरीय अद्वैत आत्म शिव शुभ राशी ।
ज्ञानी के शिव निज स्वरूप में रहे राजते पुरवासी ॥हर शिव०॥३॥
पुर क्या नवद्वार परिपूरित पूर्ण पुरी शिव की खासी ।
पुरुष स्वरूप प्रकाशे शिव का बने रहे शिव अधिवासी ॥
प्रणवाक्षर-मय शिव का विग्रह पञ्चमुखी वैदिक भारी ।
प्रगटाए ज्योतिः स्वरूप शिव विधि हरि का प्रबोध कारी ॥हर शिव०॥४॥
शिव असुरों में रहे अधीश्वर सुराधीश सब जग जाने ।
महादेव शिव साम्ब सदाशिव भक्त जगत् संतत माने ॥
शिवकी महिमा का महिम्न नित पाठ होत मंगलकारी ।
शिव विग्रह भूमण्डल के सब सुयश लखाते हैं भारी ॥हर शिव०॥५॥
शङ्कर सुखकर, शङ्कर शुभकर, शङ्कर हितकर हैं भाते ।
शंकर प्रियकर भक्तजनों में आशुतोष ये कहलाते ॥
शंकर देव दनुज नर कारण शतशत रूप धरा करते ।
महिमा शंकर की गाते अवतार स्वयं शंकर धरते ॥हर शिव०॥६॥

गौरी प्रिया शक्ति शंकरकी रही कभी थी जो काली।
काली-काली कहकर शंकर रहे चिढ़ाते वह काली॥
काली आलीने तप कीन्हा हुई स्वच्छ गोरी काली।
गौरी नाम पड़ा बस इनका सती भवानी भइ काली॥ हर शिव शंकर॥
हरके नाम हजारों लाखों कोटि-कोटि गारहे हरे।
शिवके नाम सहस्रों लेते नमः लगाए विपद टरे॥
शंकर भोले भाले शंकर कहते धन भण्डार भरे।
गौरी शंकर गृही जनोंके मंगळमय सब काज करे॥ हर शिव शंकर॥
गोरे शङ्कर गोरी काली कर्पूर-द्युति है भायी।
माया स्वयं रही गौरी यह शङ्कर ईश्वर हैं मायी॥
माहेश्वरके रूप मनोहर माहेश्वरी उन्हें प्यारी।
गौरी शङ्कर गिरिजापति या नाम भए अति सुखकारी॥हर शिव०॥
वेद पुराण बखानें ऋषि-मुनि निर्गुण-सगुण रूप शिवके।
युग-युगसे नर-नारी सारे बाल वृद्ध प्यारे शिवके॥
वर्णाश्रमी सभी भोगी क्या योगी भक्त रहे शिवके।
त्यागी ज्ञानी ब्रह्मरूपमें सदा अवस्थित हैं शिवके॥१०॥
हर शिव शंकर गौरी शंकर झल्लरिकी झंकार सुनो।
हर शिव शंकर गौरीशंकर संकीर्तनकी बनी ध्वनी॥

कंकर नहीं शङ्कर कहो

साकार सचराचर जगत् पूजे अनेकाकारको,
मन-बुद्धिसे निर्गुण लखे ध्याये विना आकारको।
इस निराकार अखण्ड शिवके ब्रह्ममय सब पिण्ड हैं,
जो नर्मदेश्वर रूपमें लखते तथा ब्रह्माण्ड हैं॥१॥
कंकर नहीं शंकर लखे ऋषि-मुनि-सुरासुर वे सभी।
नर-नारि-बालक-वृद्ध वा विद्वद् अविद्वद् वर्ग भी॥
पूजे यहाँ पाए सही आस्तिक सुभक्त प्रसिद्ध हैं।
प्रत्यक्ष देखें आज भी होते मनोरथ सिद्ध हैं॥२॥

सब विष्णुके साकार विग्रह चार भुजवाले यहाँ।
गौरीशके भी पञ्चमुख त्र्यम्बक स्वरूप जहाँ तहाँ ॥
मानी विना आकारकी ज्यों मूर्ति शालिग्रामकी।
रामेश्वरादि अमूर्ति त्यों समझो सदा शिव नामकी ॥३॥

हों प्रथम ज्योतिर्लिङ्ग वे होते स्वयंभू लिङ्ग हैं।
इस पाञ्चभौतिक धरापर सब भूत पाँचों लिङ्ग हैं॥
रवि-शशि तथा यजमान मिलकर आठ होते लिङ्ग हैं।
वे देव विधि-हरि-हर तथा त्रयमूर्ति भाते लिङ्ग हैं ॥४॥

कंकर नहीं शंकर कहो सुखकर सदा शिवरूप ये।
अज्ञानियों वा ज्ञानियोंके हुए आत्म स्वरूप ये॥
शिवलिंग शिव के चिह्न ज्यों पुल्लिग वा स्त्रीलिंग हैं।
हैं लीन अर्थ-गमक सभी शिवलिङ्ग ज्योतिर्लिङ्ग हैं ॥५॥

चिदानन्द लहरी

नर्मदा तेरे ये परमाणु।
तेजोमय हियमें प्रकाशते ज्ञान उदित जिमि भानु ॥१॥
जन्म-जन्मकी पूर्ण साधना हुई तुम्हें पहचान।
निसन्देह तूँ ब्रह्म स्वरूपिणि लिया हृदयने मान ॥२॥
कल्प-कल्पका वैभव मुनिको जो दीन्हा दर्शाय।
बाँकी झाँकी सोइ प्रकट हुइ लख वह हिय हर्षाय ॥३॥
यहाँ वहाँका भेद मिटाया धन्य जननि हे माइ।
जीवन अहह ! कृतार्थ हो गया संशय सकल नशाइ ॥४॥
रग-रगमें व्यापक तूँ हुइ हैं पञ्चकोष सब व्याप्त।
पाया नहीं अभी तक जो था हुआ आज सो प्राप्त ॥५॥
चिदानन्द लहरी माँ मेरी तुझमें सभी लखाय।
नाम रूपकी न्यारी-न्यारी धारा रही बहाय ॥६॥
व्यक्ति-व्यक्ति है परिचय देता निजगुणके अनुसार।
ब्रह्मरूप सब जगको चीन्हें कोऽहं को संसार ॥७॥

शिवधाम

विश्वनाथ की पुरी में, छाए सब शिवधाम।
मठ-मन्दिर-घर-घाट-घट, दिव्य रूप अरु नाम ॥

अमरकण्ठ

देव के कण्ठों का जो हार
बन रही माँ रेवा की धार।
कह रहा अमरकण्ठ तब लोक
सेवते रहता मोह न शोक ॥१॥
नर्मदे-हर-हर करें पुकार
हर तथा हरि भी डूबे धार।
रहे सन्तत वे इसे निहार
पा गये भवसागर का पार ॥२॥
सुधा सरिस पा अन्न जल, रेवा माँ के द्वार।
महादेव लुढ़के फिरें, तज काशी हरद्वार ॥

एक सन्तकी प्रार्थना

संसार सकल असार भासे राग जगमें ना रहे।
परमात्ममय सब विश्व भासे द्वेष जगसे ना रहे ॥
चित तैलधारावत् सतत वृत्ती तुम्हारेमें लगे।
अज्ञान निशि संसारमें रविज्ञान से नित चित जगे ॥१॥
प्रभु सर्वमें देखें तुम्हें निजधर्म पथसे ना टरें।
अति परमप्रिय तुमको लखें सुमिरन अचल तुम्हरा करें ॥
कछु भिन्न होतो भजन हित नित एकतामें मुद भरें।
नित परम आनँद मग्न हो सब द्वंद्व दुखको परिहरें ॥२॥
इस देहरथको अश्व इन्द्रियँ प्रबलता से ले फिरें।
निज चपलता नहि परिहरें दुरँगम कुठाँवहि ले गिरें ॥
श्रीकृष्णजी अर्जुन रथहि बस अभय जय करवा दिया।
हे नाथ यासे तुच्छ तनुरथ आपको अर्पण किया ॥३॥

नित-शुद्ध-बुद्ध-विमुक्त आतम तनु असत् जडता मयी।
मन इन्द्रियों वश होय योनी बहुत भ्रमता दुखमयी॥
मनमोहने प्रभुवरहिं मन अरपा न एहि बिलगाबहू।
'विट्ठल' चरणरज वरचरण रख चरण में हि मिलाबहू॥४॥

उपदेशप्रद-दोहे

नारायणहरि लगन में, ये पाँचों न सुहात।
विषय भोग निद्रा हँसी, जगत प्रीति बहु बात॥१॥
रे मन तू सत्संग कर, सीख भजन की रीत।
काम क्रोध मद लोभ में, गई आयु सब बीत॥२॥
भजन करो भगवान का, विलँब करो जिन कोय।
ना जाने यां देह को, कौन घड़ी क्या होय॥३॥
तन पवित्र सेवा किये धन पवित्र किये दान।
मन पवित्र हरिभजन से होत त्रिविध कल्याण॥४॥
मूये को प्रभु देत हैं, लकड़ी कपड़ा आग।
जीवित चिन्ता जो करे, ताको बड़ो अभाग॥५॥
कलि केवल संसार में, और न कोउ उपाय।
साधु संग हरिनाम बिन, मन की तपन न जाय॥६॥
उज्जर कपड़ा पहनते पान सुपारी खाँय।
तुलसी हरिके भजन बिन यमपुर बांधे जांय॥७॥
मन फुरनासे रहित कर, जौनहिं विधिसे होय।
चहै भक्ति चहै ध्यान कर, चहै ज्ञानसे खोय॥८॥
ग्रन्थ पन्थ सब जगतके, बात बतावत तीन।
राम हृदय मन में दया, तन सेवामें लीन॥९॥
तुलसी या संसारमें सबसे मिलिये धाय।
ना जाने केहि रूपमें नारायण मिल जाय॥१०॥
नारायण जाके हिये सुन्दर श्याम समात।
फूल पात अरु डाल पै ताको वही लखात॥११॥

भगवत्पाद श्रीशंकराचार्य की कल्याणी वाणी

**शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं. यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम् ।
हरेरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं, ततः किं ततः किं ततः किं ततः किं ॥**

नीरोग सुन्दर शरीर प्राप्त हुआ तो उससे क्या ? सुन्दर सती स्त्री पुत्रादि मिले तो उससे भी क्या ? सुमेरू पर्वत सा विपुल धन और अलौकिक कीर्ति कमाली तो उससे भी क्या ? यदि शुद्ध भाव से भगवान् श्रीहरिमें मन नहीं लगा ॥१॥

**विदेशेषु मान्यः, स्वदेशेषु धन्यः, सदाचरवृत्तेषु मत्तो न चान्यः ।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं, ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥**

विदेशमें मान, स्वदेशमें प्रशंसा तथा सदाचार निष्ठाका का गर्व अर्थात् मुझसे बढ़कर दूसरा कौन है ? इतना सब होनेपर भी यदि श्रीहरि या सद्गुरु चरण कमलमें मन नहीं लगा तो उससे भी क्या हुआ ? ॥२॥

धन्य कौन तथा भाग्यवान् कौन ?

**तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां, तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम् ।
ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चितेहाः, शेषास्तु भ्रमनिलये परिभ्रमन्ति ॥**

वास्तविक ज्ञान वही जो इन्द्रियोंके चाञ्चल्यको शमन करे । ज्ञेय (जानने योग्य) भी वही जो उपनिषदोंमें सद्गुरु द्वारा निश्चित किया गया है । धन्य वे ही जिन्होंने इस धराधाममें परमार्थ तत्त्व निश्चित किया । शेष सभी जन भ्रामक भूल भुलैयोंमें ही भटक रहे हैं ॥१॥

**आदौ विजित्य विषयान्मदमोह-रागद्वेषादि-शत्रुगणमाहृतयोगराज्याः ।
ज्ञात्वाऽमृतं समनुभूय परात्मविद्या-कान्तासुखा वनगृहे विचरन्ति धन्याः ॥**

**वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो, भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः ।
अशोकवन्तः करुणैकवन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥१॥**

प्रथम जिन्होंने शब्दादि विषयों सहित मद-मोह-राग-द्वेष आदि शत्रुओं को जीतकर योगराज्यमें प्रवेश किया । और अद्वैतरूप अमृतत्त्वको सद्गुरु द्वारा जानकर ब्रह्मविद्यारूपी वधूका आनन्दास्वादन लेते हुए वनरूपी

विशालगृहमें जो निर्द्वन्द्व विचरे हैं वे ही धन्य हैं ॥२॥

सदैव वेदान्त[1]-वाक्योंमें रमनेवाले, केवल भिक्षान्नसे ही सन्तुष्ट, शोक हीन स्वार्थरहित दयाशील कौपीनधारी सन्त ही भाग्यशाली हैं ॥१॥

मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः, पाणिद्वयं भोक्तुममन्त्रयन्तः।
कन्थामपि स्त्रीमिव कुत्सयन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥२॥

वृक्षके नीचे ही आश्रय ले लेनेवाले, भिक्षान्न ग्रहण करनेको पाणि ही जिनके पात्र हो जाते हैं, रागिणो स्त्री सा गुदड़ीका भी निरादर करनेवाले कौपीनधारी यतिवृन्द ही भाग्यशाली हैं ॥२॥

देहाभिमानं परिहृत्य दूरादात्मानमात्मन्यवलोकयन्तः।
अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥३॥

देहमें अहन्ताको दूरसे ही त्यागकर अपने आत्मामें निज स्वरूपका साक्षात्कार करते हुए, निरन्तर ब्रह्मस्वरूपमें रमनेवाले विरक्त विद्वान् सन्त ही वास्तवमें आत्मनिष्ठ हुए भाग्यशाली हैं ॥३॥

स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः, स्वशान्तसर्वेन्द्रियवृत्तिमन्तः।
नान्तं न मध्यं न बहिः स्मरन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥४॥
पञ्चाक्षरं पावनमुच्चरन्तः, पतिं पशूनां हृदि भावयन्तः।
भिक्षाशना दिक्षु परिभ्रमन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥५॥

निजानन्द स्वरूपमें सर्वथा निमग्न, सभी इन्द्रिय और अन्तःकरणकी वृत्तियोंको आत्मामें शान्त रखनेवाले, अन्तर्मध्य और बाह्य प्रपञ्चपर दृष्टि पात न करनेवाले कौपीनधारी तत्त्वज्ञानी महात्मा ही सचमुच भाग्यशाली हैं। पवित्र पञ्चाक्षर (नमः शिवाय) महामन्त्रका उच्चारण करते हुए, चराचर पति श्रीविश्वनाथको हृदयमें बसानेवाले स्वच्छन्द दशों दिशाओंमें भ्रमणशील पवित्र भिक्षान्न भोजी कौपीनधारी परिव्राजक ही यथार्थ में भाग्यवान् हैं ॥४-५॥

---

१. वीतराग विद्वान् महात्माओंसे तत्त्वबोध, आत्मबोध, विवेकचूड़ामणि पञ्चदशी, उपनिषद् शांकर भाष्य, गीता शां० भा०, ब्रह्मसूत्र शां० भा० आदि वेदान्त ग्रन्थ पढ़े, स्वयं पढ़नेसे तत्त्वज्ञान नहीं होता।

नित्य कर्म विधि

सर्व प्रथम आस्तिक जन सदाचार का पालन करें । साधकों को सदा अपनी पवित्र दिनचर्या व्यवस्थित रखते हुए जीवन को कल्याणकारी बनाना चाहिये ।

प्रातः जागने का समय

सूर्योदय से प्रातः दो घन्टा पहले अर्थात चार बजे से ब्राह्म मुहूर्त होता है । इसमें सोने से पहले किया हुआ पुण्य भी क्षीण हो जाता है । शास्त्र में कहा है :-

ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्य-क्षयकारिणी ।

अतः इस अवसर पर उठना चाहिए और उठते ही बिस्तर पर बैठकर माङ्गलिक श्लोक बोलना चाहिए ।

प्रातः स्मरण- मंगल पाठ

गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे, गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण ।
गोविन्द गोविन्द रथांगपाणे, गोविन्द गोजिन्द नमो नमस्ते ॥१॥
ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रः शनि राहु केतवः, कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥२॥
भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च मनुः पुलस्त्यः पुलहः सगौतमः ।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनो ऋभुश्च कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥३॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च ।
सप्त स्वराः सप्त रसातलाश्च कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥४॥
पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथापः स्पर्शश्च वायुर्ज्वलनः सतेजाः
नभः सशब्दं महता सहैव यच्छंतु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥५॥
सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च सप्तर्षयो द्वीपवराश्चसप्त ।
भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त ददन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥६॥
इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं पठेत स्मरेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या ।
दुःस्वप्ननाशोऽनघ सुप्रभातं भवेच्च सत्यं भगवत्प्रसादात् ॥७॥

अश्वत्थामा वलिर्व्यासोहनुमाँश्चविभीषणः ।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥१॥
सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेय मथाष्टमम् ।
जीवेद्वर्षशतं सोऽपि सर्व व्याधि विवर्जितः ॥२॥
अहिल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा ।
पंचकं ना स्मरेन्नित्यं महापापविनाशनम् ॥३॥
अयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्ष दायिकाः ॥४॥
एतानि प्रातरुत्थाय संस्मरिष्यन्ति ये नराः ।
सर्व पापैः प्रमुच्यन्ते स्वर्गलोक मवाप्नुयुः ॥५॥

मंत्र बोलते हुए प्रथम अपने हाथ का दर्शन करे फिर भूमिपर पैर रखे ।

करा्ग्रेवसते लक्ष्मीः, करमध्ये सरस्वती ।
करमूले स्थितो ब्रह्मा, प्रभाते करदर्शनम् ॥
समुद्रवसने देवि ! पर्वत-स्तन-मण्डिते ।
विष्णुपत्नि ! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

पश्चात् बिस्तर से उठते ही मल मूत्र का त्याग करना अति आवश्यक है । मल मूत्र के वेग को रोकने से रक्त दूषित नाना प्रकार के रोग होते हैं । मल त्याग के बाद पर्याप्त जल से गुह्यअंग धोकर मिट्टी से हाथ धोने चाहिए । मिट्टी से जैसे हाथ साफ होते हैं और दुर्गन्ध दूर होती है वैसे साबुन आदि द्रव्य से नहीं होते । क्योंकि पित्त के संयोग से मल में तेल की तरह एक प्रकार का लसीला पदार्थ रहता है वह केवल मिट्टी से छूटता है अतः तीनबार मिट्टी लगाकर फिर शुद्ध जल से हाथ धोने चाहिए । खड़े खड़े कदापि मल मूत्र का त्याग नहीं करे । केवल लघुशंका करने पर भी हाथ धोके कुल्ला करें ।

प्रातः स्नान की महिमा और विधिः-

जलाशय में या जलाशय के किनारे बैठकर दाँतुन करना भी पाप है । **दाँतन**

कुल्ला करके नाभि पर्यन्त जल में जाकर प्रवाह या सूर्य की ओर मुँह करे । जल के ऊपर ब्रह्म हत्या रहती है। इस लिये जल को हिलाते हुए स्नान करे सूर्योदय से पहले स्नान करने का महत्त्व है । रात्रि में चन्द्र और नक्षत्रों की किरणों से जो अमृत बरसता रहता है उषा काल में सूर्योदय के बाद सूर्य अपनी किरणों द्वारा उस अमृत को खींच लेता है । सूर्योदय से पहले नहा लेने पर वह अमृत स्नान हो जाता है । उस समय स्नान करने से शरीर में बल की बृद्धि होती है बुद्धि सतेज होती है । मन प्रफुल्लित और शरीर नीरोग रहता है ।

अतः सूर्योदय से पहले स्नान अवश्य करना चाहिए । घर में भी स्नान से पहले सब तीर्थों का आवाहन करके फिर स्नान करे । शौचालय के नल में नहीं अतः स्नानगृह अलग होना चाहिए । पवित्र स्थल पर मन्त्रोच्चारण करना उचित है ।

पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्या सरितस्तथा ।
आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदा मम ॥१ ॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती ।
नर्मदे सिंधु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥२ ॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णु लोकं स गच्छति ॥३ ॥

शरीर अस्वस्थ रहने पर गीले कपड़े से शरीर पोंछ कर वस्त्र बदल दें । यह भी एक प्रकार का स्नान है । स्नान के बाद शुद्ध वस्त्र पहन कर पवित्र स्थान या एकान्त में अथवा मन्दिर में, अधिकारानुसार कम्बल, रेशम ऊन, अथवा मृगचर्म या कुशा आदि के आसन पर बैठ कर शिखा बन्धन करके मस्तकादि स्थानों में चन्दन, भस्म आदि का तिलक धारण करना चाहिए । इससे हृदय में भक्ति और सद्भाव स्वतः ही होने लगते हैं । प्रातः काल सूर्याभिमुख, सायंकाल पश्चिमाभिमुख एवं रात्रि आदि समय में उत्तराभिमुख होकर बैठ कर पूजा पाठ जप आदि करना चाहिए ।

'सन्ध्योपासना'

द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) को तो अवश्य ही सन्ध्योपासना करनी चाहिए क्योंकि यह नित्य कर्म है । सन्ध्या नहीं करन का दोष शास्त्र में लिखा है ।

सन्ध्या येन न विज्ञाता, सन्ध्या येनाऽनुपासिता ।
जीवमानो भवेच्छूद्रो, मृतः श्वा चाभिजायते ॥

जिसे सन्ध्या का ज्ञान नहीं और जो सन्ध्या के समय उपासना नहीं करता वह जीते हुए शूद्र के समान होता है और मर कर कुत्ते का जन्म लेता है । अतः 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' वेद में लिखा है कि प्रतिदिन सन्ध्योपासना करनी चाहिए । इसमें गायत्री मन्त्र का यथाशक्ति जाप करे । बाद में गुरु मन्त्र का जाप भी अवश्य नियम से करे ।

आचमन मन्त्र – (१) ॐ केशवाय नमः (२) ॐ नारायणाय नमः (३) ॐ माधवाय नमः अनन्तर ॐ गोविन्दाय नमः बोलकर हाथ धोवे । फिर शरीर पर जल छिड़के मंत्र बोलता हुआ

आसन मन्त्र – ॐ अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं, स बाह्याभ्यान्तरः शुचिः ।।१।।
ॐ पृथ्वि त्वा धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ।।२।।

पश्चात् हाथ में जल लेकर संकल्प करें

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्री मद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथम-चरणे भारत वर्षे (भरत खण्डे) जम्बू द्वीपे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते अमुक क्षेत्रे वर्तमानयथानाम संवत्सरे अमुक मासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरे अमुक गोत्र उत्पन्नः अमुक नामाऽहं (शर्माऽहं, वर्माऽहं, गुप्तोऽहं) अहं सन्ध्योपासनं कर्म करिष्ये ।

मार्जन मन्त्र: (शिर पर छींटे लेते हुए)

ॐ आपोहिष्ठामयो भुव: तानऽउर्ज्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ।योव: शिवतमो रस: तस्य भाजयते हन: । उशतीरिवमातर: । तस्माऽअरङ्गमाम व । यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च न: ।

फिर षोडशोपचार विधि से पञ्चायतन देवताओं का पूजन करें ।

पञ्चायतन देवता स्वरूपम्

गणेश, देवी, विष्णु, शिव, सूर्य ये पञ्चायतन देवता हैं । वस्तुत : इन पांचो में कोई अन्तर नहीं, फिर भी एक ही ईश्वर की पांच रूपों में उपासना करने का रहस्य यह है कि मानव शरीर पृथ्वी, जल अग्नि, वायु, आकाश इन पांच तत्त्वों से बना है । आकाश आदि तत्त्वों की न्यून-अधिकता के अनुसार प्रत्येक मनुष्य की भावना किसी न किसी भिन्न देवता की ओर आकृष्ट रहती है । देखने में भी आता है कि बाल्यावस्था से ही शंकर में विशेष भाव होता है, किसी को विष्णु में अन्य देव की ओर भी आकर्षण रहता है । शास्त्र में कहा है -

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी ।
वायो: सूर्य: क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिप: ॥

आकाश तत्त्व के अधिपति विष्णु, अग्नि तत्त्व के महेश्वर वायु तत्त्व के सूर्य, पृथ्वी तत्त्व के शिव और जल तत्त्व के प्रधान देव गणेश भगवान् हैं । इसीलिए ब्रह्मनिष्ठ तत्त्ववेत्ता सदगुरु अपने शरणागत शिष्यों को प्रकृति और अधिकार के अनुसार उपासना मार्ग का उपदेश करते हैं ।

सन्ध्यामें सूर्यध्यानम्

ध्येय: सदा सवितृ मण्डलमध्यवर्ती -
नारायण: सरिसिजासन-सन्निविष्ट: ।
केयूरवान् मकर-कुण्डलवान् किरीटी,
हारी हिरण्मय वपुर्धृत शङ्ख चक्र: ॥

पाँच देवताओं के स्वरूप का ध्यान करके षोडशोपचार विधि से पूजा करे ।

इष्ट देव पूजा के अनन्तर रक्त चन्दन और रक्त पुष्प से युक्त जल अञ्जली में लेकर सूर्य भगवान् को अर्घ्य देवे । मंत्र बोले -

ॐ एहि सूर्य सहस्रांशो तेजो राशि जगत्पते ।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्ध्य दिवाकर ॥

फिर सूर्य भगवान् को नमस्कार करे ।

जन्मान्तर सहस्त्रेषु दारिद्रयं नोपजायते ।
आदित्याय नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने ॥ यह फलठ श्रुति है ।

तदनन्तर पवित्र अन्तः करण होकर निष्कपट भाव से अपने इष्टदेव के मंत्रों से अपने इष्ट देव को एवं माता, पिता गुरुदेव को (साष्टांग) नमस्कार करे ।

अग्नि को जिवाने के लिये गैस के चूल्हों पर भी छोटा सा लोहे का पतला गोलाकार टुकड़ा रखकर लाल हो जाने पर उसमें भात आदि की आहुति प्रतिदिन दे । इससे देवता प्रसन्न होते हैं अन्न की शुद्धि भी हो जाती है ।

वृद्ध तथा पूज्यों के चरण स्पर्श तथा नित्य नमस्कार और सेवा करने वालों में आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है । आध्यात्मिक उन्नति के लिये भी उच्च गुण विशिष्ट गुरु जनों का चरण स्पर्श (नमस्कार) करना महान् लाभ दायक है ।

प्रत्येक मनुष्य में एक प्रकार की विद्युत शक्ति रहती है जो मनुष्य की प्रकृति और चरित्र के भेद से सत्व, रज तम रूप से विराजमान है और शिरो भाग से पैर के तरफ चलती है । जब महा पुरषों के चरणों में नमस्कार करते हैं तब उनके शरीर में रहने वाली सतोगुण विशिष्ट विद्युत् शक्ति चरणों के तरफ से निकल कर नमस्कार करने वाले के शिरोभाग से शरीर में प्रवेश कर जाती है । अर्थात् नमस्कार करने वाले को अनायास ही महान् शक्ति प्राप्त हो जाती है ।

भोजन से पहले भगवत् चरणामृत अवश्य गृहण करे । तुलसी, दूर्वा विल्वपत्रादि निर्माल्य सेवन से भी महान पुण्य ही होता है । इसके अतिरिक्त मलेरिया आदि रोग नाशिनी शक्ति इनमें विद्यमान है और शरीर मन आत्मा सभी

के लिये उन्नति प्रद है । इस बात को आजकल के पाश्चात्य वैज्ञानिक लोगों ने भी माना है ।

पंच महायज्ञ

हर एक गृहस्थ का प्रधान कर्तव्य है कि नित्य होने वाले पापों के नाश के लिये पंच महायज्ञ का अनुष्ठान करे ।

अध्यापनं ब्रह्म यज्ञ: पितृयज्ञस्तुतर्पणम् ।
होमो दैवो वलि र्भूतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥

ब्रह्मयज्ञ - गीता, पुराणादि पढ़ना पढ़ाना । पितृयज्ञ - श्राद्ध तथा तर्पण ।
देवयज्ञ - पूजन और हवन ।

भूत यज्ञ - बलि वैश्वदेव (पशुपक्षी आदि को अन्न आदि दान, गोग्रा-सादि)

नृयज्ञ - अतिथि सत्कार ये पंच महायज्ञ हैं ।

'भोजन'

गृहस्थी को पांच महा यज्ञ के बाद ही भोजन करना चाहिये बिना स्नान जप किये भोजन नहीं करें । बिना स्नान किये खाने से मल का भोजन और बिना जप, पूजा किये खाने से पीप और रुधिर के समान निकृष्ट भोजन माना गया है ।

अस्नात्वाशी मलं भुङ्क्ते, अजपी पूय शोणितम् ।

भगवान को नैवेद्य लगाकर फिर प्रसाद समझ कर भोजन करना चाहिए । भोजन शुद्ध होना चाहिए । प्याज, लहसन आदि तामसी चीजों को कभी नहीं खाना चाहिए । इनसे मन चंचल और काम परायण होता है । तथा अन्त: करण श्री भगवान की ओर से हट कर विषय की ओर आकृष्ट होता है ।

इसी कारण वेद शास्त्र में यह यवन जाती का खाद्य बताया गया है । इसी तरह, मांस, मछली, अण्डे आदि के भक्षण से तमोगुण की वृद्धि से बुद्धि विषयासक्त होकर भ्रष्ट हो जाती है । अत: शास्त्र निषिद्ध प्याज मांसादि द्विजातियों को सर्वथा नहीं खाना चाहिए ।

"आयुष्यं प्राङ्मुखे भुङ्क्ते यशस्वं दक्षिणामुखः"

आयु जाहने वाले को पूर्व मुख औरयश चाहने वाले को दक्षिण मुख होकर भोजन करना जाहिए । माथा लपेट कर अपवित्र अवस्था में या जूता पहन कर भोजन नहीं करे ।

'आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घायुरवाप्नुयात्'

गीले पैर भोजन करने से आयु बढ़ती है । इसीलिए हाथ पाँव धोकर मौन होकर भोजन करना चाहिए । भोजन करने के पहले नीचे लिखा मंत्र बोलकर भोजन के चारों ओर तीन बार घुमाकर जल छोड़े ।

फिर ॐ प्रणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा, बोलकर पाँच बार एक एक ग्रास खाकर बाद में भोजन करे । भोजन के बाद हाथ धोकर आचमन करे ।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणा पाना समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥

फिर कुल्ला करके यह मन्त्र बोले

अन्नाद्भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्न संभवः ।
यज्ञाद् भवन्ति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥

मध्यान्ह भोजन के बाद निद्रा न लेकर केवल आँखे बन्द कर आधी घड़ी वाम पार्श्व में विश्राम कर लेना चाहिए । दिन में सोने का निषेध किया है -

दिवा स्वप्नं न कुर्वीत स्त्रियंश्चैव परित्यजेत् ।
आयुः क्षीणा दिवा निद्रा दिवा स्त्री पुण्य-नाशिनी ॥

दिवा निद्रा और दिन में स्त्री सम्बन्ध वर्जनीय है । दिन में निद्रा लेने से आयु क्षीण होती है और दिन में स्त्री भोग करने से पुण्य का नाश होता है ।

सायंकाल सन्ध्या - सायं सन्ध्या सूर्य अस्त होते होते करना चाहिए । सन्ध्या समय भोजन करना, स्त्री संग करना, निद्रा लेना और पढ़ना पढ़ाना पाप जनक है । यह उपासना का समय है । गृहस्थ को रात्री में भोजन अवश्य करना चाहिए ।

'शयन'

पूर्व अथवा दक्षिण की ओर सिर करके सोने से शरीर शक्ति एवं स्मरणशक्ति बढ़ती है, और आयु की वृद्धि होती है । पश्चिम और उत्तर सिर करके सोने से चिन्ता और रोग बढ़ता है ।

शयन से पहले श्री भगवान का स्मरण कर उन्हीं का गुणानुवाद करते हुए सोना चाहिए । इससे आनन्द पूर्वक सुनिद्रा होती है ।

संक्षेप से यह नित्य नियम की विधि है । इसके नित्य अनुष्ठान से जन्म जन्मान्तर पापों की निवृत्ति और मोक्ष की प्राप्ति होती है । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

* — *

मानसिक पूजा

साक्षात् मूर्तिपूजन की अपेक्षा मानसिक पूजन सहस्र गुणा श्रेष्ठ है । बाह्य पूजन में चित्त की वृत्ति बहिर्मुखी रहती है और मानसिक पूजन में अन्तर्मुखी वृत्ति होने से अति शीघ्र ही मन की स्थिरता और अन्तः करण की शुद्धि हो जाती है फिर आत्मज्ञान का अधिकारी हो जाता है । इसलिये एकान्त निर्जन स्थान में पवित्र आसन पर बैठकर मानसिक स्नान करे ।

मंत्र-इडा भागीरथी गंगा पिङ्गला यमुना स्मृता
तयोर्मध्यगता नाड़ी सुषुन्माख्या सरस्वती ।
ध्यान ह्रदे ज्ञान जले, रागद्वेष मलापहे ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ।

फिर अपने इष्ट देव (सन्मुख स्थित मूर्ति को हृदय में) धारण करके नेत्र मूँद कर समाहित चित्त से भक्तवत्सल करूणामय परमात्मा मेरे हृदय में ही विराजमान है, ऐसी भावना करके षोडशोपचार विधि से मानसिक पूजा करें ध्यान लगाकर आवाहनं समर्पयामि ! आसनं सर्मपयामि हृदयमें दिव्य सिंहासन के ऊपर । पाद्यं समर्यामि (पाद प्रक्षालन करे) अर्ध्य समर्पयामि (हाथ धुलावे) ।

आचमनं समर्पयामि अक्षत छोड़े ।

स्नानीयं जलं समर्पयामि (पंचामृतादि से स्नान करावे) ध्यान में ।
यज्ञोपवीतं समर्पयामि । गन्धाक्षतान् स. (चन्दन अक्षत चढावे) ।
पुष्पं समर्पयामि (विल्वपत्र, तुलसी, सुगन्ध पुष्पादि चढावे) ।
धूपं आघ्रापयामि । दीपं दर्शयामि ।

नैवेद्यं समर्पयामि ।(एक स्वर्ण की थाली में नाना प्रकार के साग भाजी पकवान्न आदि को अर्पण करे । फलं समर्पयामि (अनेक प्रकार के फल अर्पण करे) ताम्बूलं समर्पयामि दक्षिणां समर्पयामि । अनन्तर मन से ही आरती करके पुष्पांजली के बाद नमस्कार करे । फिर प्रार्थना करे ।

अपराधः सहस्त्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा गृहाण परमेश्वर ॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् कारुण्य भावेन रक्ष रक्ष महेश्वर ॥
आवाहनं न जानामि, न जानामि विर्सजनम् ।
पूजां चैव न जानामि, क्षमस्व परमेश्वर ॥

फिर अपने इष्टदेव का ध्यान अवश्य करे ।

वाचिक पूजा—भगवान के विविधरूपों की स्तुति यथेष्ट करने से 'इत्येषा वाङ्भयी पूजा' के अनुसार वाणी से भी यह पूजा हो जाती है । भाव पूर्ण कुछ स्तोत्र यहाँ दिए जा रहे हैं जिनके नित्य पाठ करने से भगवान् की अपार कृपा तत्काल होने लग जाती है । पूजा ज्ञानियों ने भी अपनाई । जिसे परा पूजा कहा जाता है संक्षेप में उसका दिग्दर्शन कराके उपसंहार किया जारहा है ।

अन्त में पढ़े-

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञ-क्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

स्तुति पाठ

लिङ्गाष्टकम्

ब्रह्ममुरारि सुरार्चित लिङ्गं निर्मल भासित शोभित लिङ्गम् ।
जन्मज दु:ख विनाशक लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥१॥
देव मुनि प्रवरार्चित लिङ्गं कामदहं करुणाकर लिङ्गम् ।
रावणदर्प विनाशन लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥२॥
सर्व सुगंधि सुलेपित लिङ्गं बुद्धि विवर्धन कारण लिङ्गम् ।
सिद्ध सुरासुर वंदित लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥३॥
कनक महामणिभूयित लिङ्गं फणिपति वेष्टित शोभित लिङ्गम् ।
दक्षसुयज्ञ विनाशक लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥४॥
कुंकुम चन्दन लेपित लिङ्गं पंकजहार सुशोभित लिङ्गम् ।
संचित पाप विनाशन लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥५॥
देवगणार्चित सेवित लिङ्गं भावैर्भक्ति भिरेव च लिङ्गम् ।
दिनकर कोटि प्रभाकर लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥६॥
अष्टदलोपरिवेष्टित लिङ्गं सर्व समुद्भव कारण लिङ्गम् ।
अष्ट दरिद्र विनाशित लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥७॥
सुरगुरु सुरवर पूजित लिङ्गं सुरवन पुष्पसदार्चित लिङ्गम् ।
परात्परं परमात्मक लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥८॥
लिंगाष्टक मिदं पुण्यं, यः पठेच्छि व सन्निधौ ।
शिवलोक मवाप्नोति, शिवेन सह मोदते ॥१०॥

शिवताण्डव स्तोत्रम्

जटाकटाह-संभ्रम-भ्रमन्निलिप-निर्झरी
विलोल-वीचिवल्लरी-विराजमान-मूर्धनि ।
धगद्धगद् - धगज्ज्वलल् - ललाटपट्ट पावके ।
किशोर - चन्द्रशेखरे - रतिः प्रतिक्षणं मम ॥१॥

धरा-धरेन्द्र - नन्दिनी - विलासबन्धु-बन्धुर-
स्फुरद्-दिगन्त - सन्तति - प्रमोदमानमानसे ।
कृपा-कटाक्ष-धोरणी - निरुद्ध - दुर्धरापदि,
क्वचिच्चिदम्बरे - मनो - विनोदमेतु वस्तुनि ॥२ ॥
जटाभुजंग - पिंगलस्फुरत्फणामणि प्रभा
कदम्ब - कुंकुम-द्रव - प्रलिप्त - दिग्वधूमुखे ।
मदान्ध - सिन्धुरस्फुरत् - त्वगुत्तरीय मेदुरे ।
मनो-विनोदमद्भुतं - विभर्तु - भूत भर्तरि ॥३ ॥
सहस्त्र - लोचन - प्रभृत्यशेष - लेष - शेखरः
प्रसून धूलि धोरणी विधूसरांघ्रि - पीठभूः ।
भुजङ्ग - राज - मालया निबद्ध - जाट - जूटकः
श्रियै चिराय जायतां चकोर - बन्धु शेखरः ॥४ ॥
ललाट - चत्वर - ज्वलद्धनञ्जय - स्फुलिङ्गभा ।
निपीत - पञ्च सायकं - नमन्निलिंप - नायकम् ।
सुधा मयूख - लेखया - विराजमान - शेखरं ॥
महाकपालि - सम्पदे - शिरो जटालमस्तु नः ॥५ ॥
कराल-भाल - पट्टिका - धगद्धगद्धगज्ज्वल-
द्धनञ्जयाधरीकृत-प्रचण्ड-पञ्चसायके ।
धराधरेन्द्र - नन्दिनी - कुचाग्र चित्र-पत्रक
प्रकल्पनैक - शिल्पिनि-त्रिलोचने मतिर्मम ॥६ ॥
नवीन मेघमण्डली - निरुद्ध दुर्धरस्फुरत्,
कुहू - निशीथिनी - तमः प्रबन्ध बन्धुकन्धरः ।
निलिंप - निर्झरी धरस्तनोतु कृत्ति सिन्धुरः ।
कला - निधान - बन्धुरः श्रियं जगद्धुरन्धरः ॥७ ॥
प्रफुल्ल नीलपङ्कज - प्रपञ्चकालिमच्छटा ।
विडम्बिकण्ठ-कन्धरा रुचिप्रबन्ध - कन्धरम् ।
स्मरच्छिदं पुरच्छिदं - भवच्छिदं - मखच्छिदं ।
गजच्छिदांधकच्छिदं - तमन्तकच्छिदं भजे ॥८ ॥

अगर्व - सर्वमङ्गला - कलाकदम्बमञ्जरी -
रसप्रवाहमाधुरी - विजृंभणा - मधुव्रतम् ।
स्मरान्तकं पुरान्तकं - भवान्तकं - मखान्तकं ।
गजान्तकांधकान्तकं - तमन्तकान्तकं भजे ।
जयत्वदभ्रविभ्रम - भ्रमद्‌भुजङ्गमस्फुर-
द्‌धगद्धगद्विनिर्गमत् - कराल भाल हव्यवाट् ।
धिमिद् धिमिद् - धिमिद् ध्वनन् मृदङ्ग तुङ्ग मङ्गल -
ध्वनिक्रमप्रवर्तित - प्रचण्ड ताण्डवः शिवः ॥१० ॥
दृषद्विचित्र तल्पयो-र्भुजङ्ग मौक्तिक स्रजो -
गरिष्ठ रत्न लोष्ठयोः सुहृद् विपक्ष - पक्षयोः
तृणारविन्द चक्षुषोः - प्रजामही महीन्द्रयोः
समं प्रवर्तयन् मनः कदा सदाशिवं भजे ॥११ ॥
कदा निलिम्प निर्झरी - निकुञ्ज-कोटरे वसन्
विमुक्त दुर्मतिः सदा शिरस्थ मञ्जलिं वहन् ।
विमुक्त लोल - लोचनो - ललाम भाल लग्नकः
शिवेति मन्त्रमुच्चरन् - कदासुखी भवाम्यहम् ॥१२ ॥
इमं हि नित्यमेवमुक्त मुत्तमोत्तमं स्तवं
पठन् स्मरन् ब्रुवन् नरो विशुद्धिमेति सन्ततम् ।
हरे गुरौ सुभक्तिमाशु याति नान्यथा गतिं ।
विमोहनं हि देहिनां सु शङ्करस्य चिन्तनम् ॥१३ ॥
पूजावसानसमये दशवक्त्रगीतं, यः शम्भुपूजनमिदं पठति प्रदोषे ।
तस्य स्थिरां रथगजेन्द्र तुरङ्ग युक्तां, लक्ष्मीं सदैव सुमुखीं प्रददाति शम्भुः ॥

उपनिषदों की बहुशोभमाना हैमवती उमा काशी-पुराधीश्वरी भगवती अन्न-पूर्णा से कौन नही याचना करना चाहेगा ? उनका परमाचार्य रचित प्रसिद्ध स्तोत्र भी नित्य पढ़ें - जिससे ज्ञान वैराग्य की भी सिद्धि होती है । वस्तुतः जगत् के माता पिता पार्वती परमेश्वर ही काशीपुराधीश्वरी अन्नपूर्णा और विश्वनाथ के रूप में विराजमान हैं ।

अन्नपूर्णा स्तोत्रम्

नित्या नन्दकरी वराभय-करी-सौन्दर्य रत्नाकरी
निधूर्ताखिल - धोर पावनकरी प्रत्यक्ष-महेश्वरी ।
प्रालेयाचल - वंशपावन करी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बन करी मातान्न पूर्णेश्वरी ॥१ ॥
नाना रत्न विचित्र भूषण करी हेमाम्बराडम्बरी ।
मुक्ताहार-विलम्बमान - विलसद् - वक्षोज - कुम्भान्तरी ।
काश्मीरा गुरु वासिता रुचिकरी काशीपुराधीश्वरी, भिक्षां देहि॰ ॥२ ॥
योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्मार्थ निष्टा करी
चन्द्रर्कानल - भासमान लहरी त्रैलोक्य रक्षाकरी ।
सर्वैश्वर्य - समस्त वाञ्छित करी काशी पुराधीश्वरी, भिक्षां देहि॰ ॥३ ॥
कैलासाचल - कन्दरालय करी गौरी उमा शङ्करी
कौमारी निगमार्थ -गोचर करी ओङ्कार वीजाक्षरी ।
मोक्षद्वार कपाट-पाटन करी काशीपुराधीश्वरी, भिक्षां देहि॰ ॥४ ॥
दृश्या दृश्य - प्रभूत वाहन करी ब्रह्माण्ड भाण्डोदरी
लीला नाटकसूत्र - भेदनकरी विज्ञान-दीपाङ्कुरी ।
श्री विश्वेश - मन: प्रसादन करी काशी पुराधीश्वरी, भिक्षां देहि॰ ॥५ ॥
उर्वी सर्व जनेश्वरी भगवती मातान्न पूर्णेश्वरी
वेणी नील समान - कुन्त लहरी नित्यान्न दानेश्वरी ।
सर्वानन्द करी दशाशुभकरी काशी पुराधीश्वरी, भिक्षां देहि॰ ॥६ ॥
आदिक्षान्ति - समस्त वर्णन करी शम्भोस्त्रिभावा करी
काश्मोरा त्रिजलेश्वरी त्रिलहरी नित्याङ्कुरा शर्वरी ।
कामाकांक्ष करी जनोदय करी काशी पुराधीश्वरी, भिक्षां देहि कृपा॰ ॥७ ॥
देवी सर्वविचित्ररत्नरचिता दाक्षायणी सुन्दरी
वामं स्वादु - पयोधर - प्रियकरी सौभाग्य माहेश्वरी
भक्ताभीष्टकरी दशशुभ करी काशीपुराधीश्वरी, भिक्षां देहि ॥८ ॥

चन्द्रर्कानल - कोटि कोटि सदृशा चन्द्रांशु - बिम्बाधरी
चन्द्रर्काग्नि समान - कुन्तलधरी चन्द्रार्क - वर्णेश्वरी
माला पुस्तक - पाशसांकुशधरी काशी पुराधीश्वरी, भिक्षां देहि ॥९ ॥
क्षत्रत्राण करी महाभयकरी माता कृपासागरी
साक्षात्मोक्षकरी सदाशिवकरी विश्वेश्वरी श्रीधरी
दक्षाक्रन्दकरी निरामय करी काशी पुराधीश्वरी, भिक्षां देहि ॥१० ॥
अन्नपूर्णे सदापूर्णे, शङ्कर प्राण वल्लभे ।
ज्ञान - वैराग्य - सिद्धयर्थं, भिक्षां देहि च पार्वति ॥११ ॥
माता च पार्वती देवी, पिता देवो महेश्वर: ।
बान्धवा: शिवभक्ताश्च, स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥१२ ॥

भगवान् शङ्कर की पूजा में विल्व पत्र का विशेष महत्व है । उसे विल्वाष्टक के आठ मन्त्रों का उच्चारण करके चढ़ाने से भगवान् शंकर की विशेष अनुग्रह प्राप्त होने की संभावना रहती है, पाठक अत: इन्हें भली भाँत कण्ठ करके अभीष्ट सिद्ध करें ।

विल्वाष्टकम्

त्रिदलं त्रिगुणां कारं त्रिनेत्रं च त्रिधायुतम् ।
त्रिजन्म पाप संहार मेक विल्वं शिवार्पणम् ॥१ ॥
त्रिशाखै-र्विल्व पत्रैश्च ह्यच्छिद्रै: कोम्लै: शिवै: ।
शिवपूजां करिष्यामि ह्येक विल्वं शिवार्पणम् ॥२ ॥
अखण्ड विल्व पत्रेण पूजिते नन्दिकेश्वरे ।
शुद्धयन्ति सर्व पापेभ्यो ह्येक विल्वं शिवार्पणम् ॥३ ॥
शालग्राम शिलामेकां विप्राणां जातु अर्पयेत्
सामयज्ञ महापुण्य मेक विल्वं शिवार्पणम् ॥४ ॥
दन्ति कोटि सहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
कोटि कन्या महादानं ह्येक विल्वं शिवार्पणम् ॥५ ॥
लक्ष्मया: स्तनत उत्पन्नं महादेवस्य च प्रियम् ।
विल्व-वृक्षं प्रयच्छामि ह्येक विल्वं शिवार्पणम् ॥६ ॥

दर्शनं विल्व वृक्षस्य स्पर्शनं पाप नाशनम् ।
अघोर पाप संहार मेक-विल्वं शिवार्पणम् ॥७ ॥
मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णु रूपिणे ।
अग्रतः शिवरूपाय ह्येक विल्वं शिवार्पणम् ॥८ ॥
विल्वाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिव सन्निधौ
सर्व पाप विनिर्मुक्तः शिवलोक मवाप्नुयात् ॥९ ॥

परा पूजा

अखण्डे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरुपिणे ।
स्थितेऽद्वितीये भावेऽस्मिन् कथं पूजा विधीयते ॥१ ॥
पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम् ।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यंच शुद्धस्याचमनं कुतः ॥२ ॥
निर्मलस्य कुतः स्नानं, वस्त्रं विश्वोदरस्य च ।
अगोत्रस्य त्ववर्णस्य, कुतस्तस्योपवीतकम् ॥३ ॥
निर्लेपस्य कुतो गन्धः पुष्पं निर्वासनस्य च ।
निर्विशेषस्य का भूषा कोऽलंकारो निराकृतेः ॥४ ॥
निरञ्जनस्य किं धूपै-र्दीपैर्वा सर्वसाक्षिणः ।
निजानन्दैकतृप्तस्य नैवेद्यं किं भवेदिह ॥५ ॥
विश्वानन्दयितुस्तस्य किं ताम्बूलं प्रकल्प्यते ।
स्वयं प्रकाशश्चिद्रूपो योऽसावर्कादि भासकः ॥६ ॥
प्रदक्षिणा ह्यनन्तस्य, ह्यद्वयस्य कुतो नतिः ।
वेद वाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते ॥७ ॥
स्वयं प्रकाश मानस्य कुतो नीराजनं विभोः ।
अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्वासनं भवेत् ॥८ ॥
एवमेव परापूजा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
एक बुद्धया तु देवेशे विधेया ब्रह्मवित्तमैः ॥९ ॥
अथवा 'आत्मात्वंः गिरि जामतिः' इत्यादि से अखण्ड पूजा भल ज्ञानी सदैव किया करते हैं ॥हरिः ॐ तत्सत् ॥

नर्मदाकी परिक्रमा का उद्देश्य और नियम

'रेवातीरे तपः कुर्यात्' शास्त्र की आज्ञा है—रेवा तटपर तप करे। तपसे मनोरथ सिद्ध होते हैं। भोगोंकी लालसा त्यागकर मन और इन्द्रियोंके संयम या स्वधर्म पालनमें कष्ट सहना तप कहा है। आहार विहारकी मर्यादा गुणोंका ग्रहण तथा दोषोंका परित्याग आदि नियमोंका पालन संयम है। परिक्रमासे सभी तटोंपर तप हो जाता है और वह ईश्वरकी शक्ति स्वरूप देवी देवताका लक्ष्य रखकर किया जाता है। अतः परिक्रमामें आराध्य देव हैं नर्मदा और शिव। इसलिए परिक्रमावासी सर्वदा नर्मदे हरकी धुन लगाते रहते हैं।

परिक्रमाका संकल्प करके सर्वप्रथम शिवजी और नर्मदाजीका विधिवत् पूजन करके कढ़ाई (मधुर नैवेद्य) निवेदित करे। प्रसाद कन्याओंको अवश्य दे। यथाशक्ति साधु ब्राह्मणोंको भण्डारा दान-दक्षिणा भी दे। पैसा गाँठ बाँधकर न चले। आकाश वृत्ति रखे।

दण्डवत् प्रणाम करके प्रदक्षिणा प्रारम्भ करे। अपने इष्टदेवका या पञ्चाक्षर—'नमः शिवायः' मन्त्रका जप पद-पद पर करता चले। अतः मौन रहे। जब बात करना आवश्यक हो तो खड़े होकर कर ले। हो सके तो अकेला चले। देशकालका बन्धन न रखे।

जहाँ तक हो किनारे-किनारे चले। मुकामपर पहुँच कर माईको दण्डवत् प्रणाम करले। सायं प्रातः स्नानादि करके नित्य पूजा-पाठ आरती-महिम्न-स्तोत्र गीता-रामायण-उपनिषद् आदिके अधिकसे अधिक पाठ करे। संकल्पित भागवत् पुराण, सप्तशती, रुद्री, अध्यात्म रामायणादिके १०८ पाठ परिक्रमामें सहज ही सम्पन्न हो जाते हैं।

आहार शुद्ध सात्त्विक अन्न सदावर्तमें जो बिना माँगे मिले, स्वयं हाथोंसे बनाकर, यदि कोई विरक्त साधु संन्यासी हो तो उसे भिक्षा कराकर प्रसाद ग्रहण करे। लहसुन, प्याज, मसूर, गाजर, हींग, मादक तीक्ष्ण और निषिद्ध आहार कदापि न ले। चाय, गाँजा, भाँग, चरस अफीम, पान, तम्बाकू, धूम्रपानादि व्यसन सर्वथा त्याग दे।

बिना पूछे खेती-बाड़ीसे शाक-पात, बाड़ तोड़कर लकड़ी आदि कुछ भी न ले। हिंसा, चोरी व्यभिचार काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणोंसे दूर रहे। भोगकी दृष्टि, उदर पोषण या पैसेकी कमाईका लक्ष्य रखकर परिक्रमा न करे। ध्यान रहे—त्यागी तपस्वी भजनानन्दी वैराग्यवान् साधुओंका यह मार्ग है जिस किसीका नहीं अतः संकल्प रहित होकर सदैव विचरने या रहनेका यहाँ लक्ष्य रखे।

ब्रह्मचर्यसे रहे। सत्संग भगवत्कथा देव दर्शन सन्तसेवाका लक्ष्य रखे। सदैव आत्मोद्धारके लिए वनवासी राम की भाँति पवित्र जीवन व्यतीत करे। गृहस्थ त्याग और तपकी पूर्ति इससे कर सकते हैं।

मान्यताकी पूर्तिके लिए भी परिक्रमा की जाती है, उनमें भी दौड़-धूप न करे। सदावर्तकी वस्तु कभी बेचे नहीं। आवश्यकतानुसार ही ले बोझा अधिक बाँधकर न चले। पूजाकी सामग्री सदावर्तके बदले माँग ले। सदावर्त बेचकर पैसा संग्रह करना घोर पाप है। किसीका भाररूप भी न हो। परिक्रमा पैदल ही की जाती है बाहनों पर नहीं।

चातुर्मासके आदि अन्तमें कढ़ाई करे। एक स्थानपर रहे। संगम लाँघकर पीछे न मुड़े। परिक्रमा पथमें तथा किनारे घाटोंपर और स्थानोंके आस-पास जहाँ कहीं मलमूत्र न करे। जहाँ ठहरे वहाँ गन्दगी न फैलाए। तीर्थकी रक्षा पवित्राचारसे करे।

मिथ्या कभी न बोले। बकवाद, हँसी, मजाक फिल्मी गाने चुगली निन्दा और कठोर वाणी भी न बोले। भगवच्चर्चा या नर्मदाजीका ही सदैव गुण-गान करे। वाणीका संयम भी तप है।

माईमें तैरना, गहरे जल (मध्य) में जाना, साबुन तेल लगाकर स्नान करना और जलमें दातुन कुल्ला करना तो सभीके लिए निषिद्ध है। तीर्थकी स्वच्छता पवित्रता हेतु सर्वत्र जागरूक रहे।

वस्त्र गन्दे होनेपर रीठे या सोडासे कभी धो ले। छाता जूता न रखे। पञ्चकेश धारण करे। तपस्वी जीवन बनाये। पर स्त्री और बच्चोंको साथ लेकर न चले। तप एकाकी ही किया जाता हे।

जहाँसे प्रारम्भ करे वहाँ आकर परिक्रमा पूर्ण करे और उत्सव मनाये। ओङ्कारेश्वर जाकर मुण्डन आदि कराये। भगवान्का अर्चन-पूजन करे। नर्मदाजीकी पुनः कढ़ाई करके प्रसाद ग्रहणकर निवृत्त संकल्प हो जाय। आरामसे मोटर आदि में चलने पर तप नहीं सिद्ध होगा।

नर्मदाकी दुर्दशा न करें

प्राचीन आर्योंकी धर्मशास्त्रानुमोदित वैदिक परम्परा मृत देहकी अन्त्येष्टि (अग्निदाह) संस्कार रही है। परन्तु हम अपने शास्त्रीय मार्गको छोड़कर शवका जल प्रवाह, अर्धदाह, भूमिखात, आदि कर्म करने लग गये हैं यह अनुचित है। प्रायः इसमें लकड़ी या धनकी कमी होना हेतु दे दिया जाता है। अतः सरकारको लकड़ीका व्यापक प्रबन्ध करना चाहिए या विद्युत शवदाह गृह बनाए।

श्मशान घाट उपयोगी घाटसे कमसे कम दो फर्लांग दूर व्यवस्थित किया जाना चाहिए। मृत पशुओंको, शवोंको, अर्धजले शवोंको कोई भी जलमें न डाल सके इसकी पूरी देखभाल शासकोंको सदैव करते रहना चाहिए। बढ़ती हुई मांसाहारकी प्रवृत्तिने बड़े-बड़े जलजन्तुओंका सफाया कर डाला। इन जलजीवोंके अभावमें किनारे वा घाटों पर मनुष्य तथा पशुओंके शव सड़ते नजर आते हैं। कौवे कुत्ते आदि उनकी दुर्गति भी करते हैं। जल भी दूषित होता रहता है यह सुस्पष्ट है अतः स्वास्थ्य विभागकी निद्रा इस विषयमें शीघ्र भंग होनी चाहिए। ग्राम पंचायतोंको तत्काल इन सबकी व्यवस्था करनी चाहिए। जनगण नर्मदा की रक्षा करें।

शास्त्रीय मर्यादानुसार जीवकी सद्गति हेतु भस्मसात् अस्थियाँ (फूल) अथवा भस्म (खारी) ही केवल गंगा नर्मदा आदिमें डाली जाती है अन्य शव पिण्ड नहीं।

उपर्युक्त नियमों का पालन भी नर्मदा भक्तोंकी माँके प्रति भक्ति मानी जायगी। सारांश यही तीर्थंजननीको किसी प्रकार दूषित न होने दे। नहीं तो पुण्य वरदा नर्मदाके अमृतमय जलका स्नान पानादि भी एक आख्यानका विषय मात्र रह जायेगा।

घोर पापसे बचे

सुर-नर-मुनिवन्दित तीर्थं जननी नर्मदा मैय्याकी महिमा हम सुन चुके। द्रवीभूत हुए श्रीमहादेवकी करुणा जगत्के उद्धार हेतु नर्मदा रूपसे आज भी यहाँ दृष्टि गोचर हो रही है। पुण्य सलिला नर्मदाके पावन तटपर भक्तजनों द्वारा स्नान-ध्यान-श्राद्ध तर्पण आदि नित्य नैमित्तिक कर्म सम्पन्न किये जाते हैं। परन्तु कुछ दुष्ट प्रकृतिके नर पिशाचोंने घाटोंपर ही मल-मूत्र, दाँतुन कुल्ला करना, जलमें थूकना, दाँतुन फेंकना, साबुनसे नहाना वा कपड़े धोना अपना नित्य नैमित्तिक कर्म बना लिया है। इससे पवित्र तीर्थोंके प्रति अस्तिकोंके भी हृदयमें घृणाका भाव उदय होता है। अतः तीर्थोंकी पवित्रताकी रक्षा हेतु तथा जघन्य पाप से बचनेके लिए निम्नोक्त नियमोंका पालन दृढ़तासे हो।

१—प्रथम तो जलके अधिष्ठात्रीदेवता वरुण हैं इस बातको ध्यानमें रखना चाहिए। अतः कदापि किसी भी जलाशय में न थूकें, कुल्ला, दाँतुन कै (उल्टी) आदि नहीं करें। घाटोंपर चलने फिरने बैठनेकी जगह तथा बुर्जोंके आस-पास कोनोंमें पेशाब दातुन कुल्ला आदि न करें। जिससे तुम्हारी गन्दगीपर पैर रखकर स्नानार्थी अपवित्र हो जायँ और दुर्गन्धसे अपना मस्तिष्क दूषित कर तुम्हें गालियाँ न देते रहें। अतः इस कुचालसे बचनेका पूर्ण प्रयास करें।

२—घाटोंपर मल-मूत्र करना, गन्दे कपड़े धोना, घाट व मार्ग या घरका कूड़ा कचरा, क्षौर-कर्मके बाल, गन्दी नालियाँ, नगरके पतनाले, कल-कारखानोंका दूषित जल आदि नर्मदाजीमें कदापि न गिराये जायँ।

३—मछली कछुवे आदि जल जन्तुओंको सार्वजनिक घाटोंपर कभी भी कोई न पकड़े। स्नानकी जगह चमड़ेके जूते पहनकर न चलें।

४—अमावस्या आदि पर्वोंपर जहाँ हजारोंकी संख्यामें यात्री प्रति-मास आते जाते हैं। वहाँ रात्रि वास करनेवाले स्थानोंमें प्रकाशकीपूर्ण व्यवस्था हो और अँधेरेमें जहाँ तहाँ गन्दा करनेपर स्वच्छताका प्रबन्ध ग्रामपंचायत या नगरपालिकाकी ओरसे व्यवस्था अनिवार्य रहे।

परिक्रमा में स्थित क्रमशः विशेषस्थान :—

दक्षिणतट (मध्यप्रदेश-गुजरात)

अमरकण्टक से कबीर चौतरा-करंजिया (करागंगा) तुडार - संगम कुकर्रामठ-देवगाँव-रामनगर-मधुपुरी-महाराजपुर - सहस्रधारा - पदमीघाट-लुकेश्वर-कन्हैयाघाट-टेमरसंगम-ग्वारी-त्रिशूलभेद - लमेटा विक्रमपुर-झलोन-ब्रह्मकुण्ड-साँकल (शंकरापुरी) पिपरिया-गरारू-बह्माण कोठिया-शोकलपुर सोनाडह्वार - झिकोली - खैराघाट - साँडिया-पाण्डवदीप गौघाट - सूर्यकुण्ड-बाँदराभान-होशंगाबाद-खोकसर-आँवली-भिलाड़िया-घाट - गंगेश्वरी - हँडिया (ऋद्धनाथ) अजनालसंगम-पुण्यघाट बलडी-बड़केश्वर-सांकरघाट-पुनासा-धावड़ीकुण्ड - सप्तमात्रा - ममलेश्वर (ओङ्कारजी) खेड़ीघाट-माण्डव्याश्रम-नावडीटोला-सहस्रधारा-खलघाट-ब्राह्मणगाँव दतवाड़ा-कसरावद-राजघाट-(८४ मील शूलपाणिकीझाड़ी)-शूलपाणेश्वर कुम्भेश्वर-कठोरा-शुकदेव-भालौद-उचडिया-नवागाँव-गुमानादेव-अंकलेश्वर भरोड़ी - सूर्यकुण्ड - बलबलाकुण्ड-हासा.ट-विमलेश्वर ।

उत्तरतट (गुजरात-मध्यप्रदेश)

भारभूतेश्वर-भृगुक्षेत्र (भरोच) शुक्लतीर्थ-मंगलेश्वर-झीनोर-निकोरा अंगारेश्वर-कोरल-नारेश्वर-मालसर - सीनोर - अनसूया - व्यास नारायण बद्रिकाश्रम-नंदिकेश्वर-गंगनाथ-चाँदौद-करनाली - तिलकवाड़ा - मणिनागेश्वर गरुडेश्वर-८९ मील शूलपाणझाड़ी (हापेश्वर-हतनी संगम-धर्मराय) कोटेश्वर चिखलदा-बड़ावर्धा-खुजागाँव-कालीवावड़ी - माण्डवगढ - खलघाट - महेश्वर मण्डलेश्वर-विमलेश्वर - बड़बाहा - खेड़ीघाट - कोटेश्वर - चौबीस अवतार (ओङ्कारेश्वर) रामपुरा-सीतामाता-धावड़ीकुण्ड-भेटखेड़ा-पामाखेड़ी-धर्मपुरी कीटीघाट-नेमावर (सिद्धनाथ) बीजलगाँव छीपानेर मढ़ी नीलकण्ठ डिमावर-बावरी-मर्दानपुर - आँवली - तालपुरा - होलीपुरा - बुधनी - गुलजारीघाट-बाँदराभान - कुसुमेली संगम - नाँदनेर कुसुमखेड़ा - भारकच्छ बगलवाड़ा-माँगरोल-केतुधान चौरास-बौरास-शुक्लघाट-बिलथारी चावरपाठा-ब्रह्माण-धूवाँधार - केरपाणि - हरिणसंगम (हीरापुर) झलोन-सिद्धघाट भेड़ाघाट-

गोपालपुर-तिलवारा (त्रिपुरी) ग्वारीघाट-नन्दिकेश्वर-पदमी-घाट-सहस्त्रधारा-मण्डला-रामनगर-दुपट्टा-संगम कन्हैयासंगम जोगा-टिकरिया-लुटगाँव-कुल्हार संगम-कञ्चनपुर-दम्हेड़ी-भीमकुण्डी हरइटोला-दमगड़-कपिलधारा-ज्वालेश्वर-अमरकण्टक।

समस्त प्रदक्षिणा पथ २८५६ कि॰ मी॰ है। प्रत्येक घाटों का परिचय एवं दूरी का विस्तृत विवरण नया प्रकाशन **'नर्मदा प्रदक्षिणा'** नाम से इस पुस्तक का जो दूसरा भाग है वह शीघ्र प्रकाशित कराया गया। यथा संभव नर्मदाजीके घाटों का माहात्म्य भी उसमें निर्दिष्ट किया गया है दश मानचित्र (नक्शे) बढ़ा दिये गये।

विशेष सूचना

जहाँ कहीं जिन किन्हीको माहात्म्य कुछ उपलब्ध हो पुराणादि के आधार पर उसे **'ज्ञानसत्र प्रकाशन न्यास'** होशंगाबाद भिजवाकर प्रकाशित कराएँ। 'वृहत् नर्मदा पुराणसंग्रह' की योजना भी सफल हुई। समस्त श्लोक अध्यायों सहित वह आगे निवद्ध किये जा चुके ३५२ अध्यायों में खुले पन्नों में इसे ग्रहण करें। विद्वद्वर्ग ध्यान दे।

नर्मदा वैभव

दर्शें देवोंकी प्रतिमाएँ मठों मन्दिरों माँहि।
सभी घाट में सरस रही है रेवा की परिछाँहि॥
जब कब चिन्तन ध्यान देवका होय मानसिक दिव्य।
मज्जन-पान-तीर्थ अवगाहन रेवा माँ का नित्य॥ १॥

त्याग तपोमय जीवन सरसे पथ निवृत्ति का भाय।
विषयी भटकें, अटकें साधक, कृपा मातु की पाय॥
ज्ञानी ध्यानी योगी जन भी रहे मुदित मन शान्त।
निज स्वरूप में रमें सहज ही कभी न होते भ्रान्त॥ २॥

अन्न जलादिक अमृतमय, मातु नर्मदातीर।
सो हैं शिव जनगण सहित, सज काशी कश्मीर॥

समय का फेर

विगत तीस वर्षों से पुस्तक के अन्त में पञ्चसूत्री योजना पर विचार लगातार **'एक नम्र निवेदन'** शीर्षक से प्रकाशित होता रहा। उनमें से केवल एक ही शङ्कर विद्यापीठ की मार्कण्डेय संन्यास आश्रम ओङ्कारेश्वर में सार्थकता सिद्ध हुई शेष तो- **समय का फेर-** ही प्रतीत हुआ जोकि शास्त्र सम्मत भी है-

गृहे-गृहे पुस्तक भारभारं, पुरे-पुरे पण्डित-यूथ-यूथम्।
मठे-मठे तापस-वृन्द-वृन्दं, न ब्रह्मवेत्ता न च कर्मकर्ता।।

घर घर में पुस्तकों का अम्बार लगा है। नगरों में पण्डितों की भी भरमार है तथा मठों में भी तपस्विओं की भीड़ देखी जाती है ; परन्तु न तो कोई ब्रह्मवेत्ता वहाँ हैं और न कहीं सत्कर्मकर्ता ही पाये जाते हैं।

भूतानि सन्ति सकलानि बहूनि दिक्षु,
बोधान्वितानि विरलानि भवन्ति किन्तु।
वृक्षा भवन्ति फल पल्लव जाल युक्ताः,
कल्पद्रुमास्तु विरलाः खलु सम्भवन्ति।।

मानव समाज सभी दिशाओं में भरा पड़ा है, किन्तु तत्त्वज्ञानी कहीं विरले ही होंगे। पत्ते-फूल-फल-डालियों से युक्त वृक्ष भी अनन्त देखे जा रहे हैं परन्तु कल्पवृक्षों की कतारें कहीं देखने में नहीं आतीं। अतः किससे क्या कहा जाय।

समय क्या से क्या हो गया। इस वैज्ञानिक युग में प्रचार प्रसार के साधनों की कमी नहीं साधकों की कमी है। बहिर्मुखता बढ रही है अन्तर्मुखता का अभाव हो रहा है । अध्यात्मवाद जड़वाद से ग्रस्त है। साधुजन भी लोकरंजन में निरत। वेद-शास्त्र-गीता-रामायण भागवत्, उपनिषदों की उपासना भी क्या समस्त अनुष्ठान स्वाँग होते जा रहे हैं। दूरभाष दूरदर्शनादि योग ध्यान के विषय नहीं रहे। सर्व साधारण के मनोरञ्जक मात्र सिद्ध हो रहे हैं। मानवता का ह्रास, मानवाभास। सती नारी अब स्वेच्छाचारिणी का रुप लेने लग गई। साधु सन्त की अर्थ लिप्सा बढ़ी, साधुता समाप्त प्रायः है। मान प्रतिष्ठा के भूखे ब्रह्मनिष्ठा से वञ्चित देखे जा रहे हैं। अधिक क्या-विद्वानों में भी वाच्यार्थ का विस्तार हो रहा है; पर लक्ष्यार्थ तो महावाक्य में ही गतार्थ होता है। अतः विवेकीज मनका मौन ग्रहण करना ही श्रेयस्कर समझने लगे।

ॐ

नर्मदा सत्संग भवन-ज्ञान सत्रायन की भव्य रूप रेखा

आज से ३३ वर्ष पूर्व नर्मदा तट नर्मदापुर होशंगाबाद म० प्र० में सम्मानिय पं० रामलाल शर्मा ने तपोमूर्ति स्वामी ओङ्कारानन्द गिरी द्वारा स्थापना कराई। जो भवन परिक्रमा वासियों के ठहरने के लिए टूटा फूटा खुला पड़ा रहता था उस में ही दो खण्डों में स्थापना हुई और ऊपर शिलालेख में नर्मदा सत्संग भवन-ज्ञान सत्रायन नाम लिखाया गया। संस्थापक तपोमूर्ति स्वामी ओङ्कारानन्द गिरी संचालक पं० रामलाल शर्मा अभी भी अंकित है।

इसमें सत्संग, आध्यात्मिक धार्मिक प्रवचन कथा तथा स्वाध्याय वर्षों तक तीन बार चलता रहा। समय-समय पर भगवद् अवतारों की तथा आचार्य सन्तों की जयन्तीयाँ धूमधाम से मनाई जाती रहीं। मध्य में कुछ स्वार्थी तत्त्वों ने अपना घर भरा और संस्था को नष्ट करने की कुचेष्टा की।

न्यास ने उसके हिसाब न देने पर उसे सदा के लिए हटा दिया और जो न्यासी भी अर्थ लेकर कुछ सेवा किए अब उन्हें स्थान देने की कोई बात नहीं रही। प्रसन्नता का विषय है कि संस्थापक के साथ ही साथ विंशेष दो महात्मा साथी होकर इसे चलाने का दृढ़ संकल्प लिये और इन्होंने सैकड़ो की संख्या में जिज्ञासु भक्त समाज को अग्रसर करके उनके तन-मन-धन से संस्था सुदृढ़ कर दी गयी।

अब यह व्यक्तिगत भवन न रहकर आध्यात्मिक धार्मिक संस्थान बन गया और शर्मा परिवार भी प्रसन्न होकर महात्माओं द्वारा चलाने का निश्चय कर लिया। इस संस्थान ने आश्रम का रूप ले लिया जिसका अर्थ है। आ+श्र+म (आत्मा का श्रवण मनन जहाँ होता रहे।) यही आश्रम कहलाता है।

इसमें जिज्ञासु भक्तसमाज जीवन लाभ लेता हुआ। जीवन मुक्त होगा इसमें सन्देह नहीं—किं बहुना शुभम् इतिः।

चैत्र पूर्णिमा, २०५८
ई० सं० २००१

निवेदक –
तपोमूर्ति स्वामी ओङ्कारानन्द गिरी

नोट :- आश्रम में ठहरने वाले यात्रियों तथा वक्ता के लिए नियम पहले से ही बोर्ड पर लिखाये हुए हैं।